सत्य की खोज
(साधना शिविर, जूनागढ़ में हुए 5 प्रवचन)

प्रवचन-क्रम

1. परतंत्रता से सत्य की ओर...2
2. भ्रम से सत्य की ओर...15
3. श्रद्धा से सत्य की ओर...29
4. स्वप्न से सत्य की ओर...46
5. शून्य से सत्य की ओर...60

सत्य की खोज
पहला प्रवचन

परतंत्रता से सत्य की ओर
(25 फरवरी 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक सम्राट ने जंगलों में गीत गाते एक पक्षी को बंद करवा लिया।
गीत गाना भी अपराध है, अगर आस-पास के लोग गलत हों! उस पक्षी को पता भी नहीं होगा कि गीत गाना भी परतंत्रता बन सकता है।
आकाश में उड़ते और वृक्षों पर बसेरा करने वाले उस पक्षी को यद्यपि सम्राट ने सोने के पिंजड़े में रखा था! उस पिंजड़े में हीरे-जवाहरात लगाए थे! करोड़ों रुपये का पिंजड़ा था वह!
लेकिन जिसने खुले आकाश की स्वतंत्रता जानी हो, उसके लिए सोने का क्या अर्थ है? हीरे-मोतियों का क्या अर्थ है? जिसने अपने पंखों से उड़ना जाना हो और जिसने सीमा-रहित आकाश में गीत गाए हों, उसके लिए पिंजड़ा चाहे सोने का हो, चाहे लोहे का, बराबर है।
वह पक्षी बहुत सिर पीट-पीट कर रोने लगा।
लेकिन सम्राट और उसके महल के लोगों ने समझा कि वह अभी गीत गा रहा है!
कुछ लोग सिर पीट कर रोते हैं, लेकिन जो नहीं जानते, वे यही समझते हैं
कि गीत गाया जा रहा है!
वह पक्षी बहुत हैरान था, बहुत परेशान था। फिर धीरे-धीरे सबसे बड़ी परेशानी तो उसे यह मालूम होने लगी, उसे डर हुआ कहीं ऐसा तो नहीं हो जाएगा कि पिंजड़े में बंद रहते-रहते मेरे पंख उड़ना भूल जाएं?
कारागृह और कोई बड़ा नुकसान नहीं कर सकता है, एक ही नुकसान कर सकता है
कि पंख उड़ना भूल जाएं।
उस पक्षी को एक ही चिंता थी कि कहीं ऐसा न हो कि खुले आकाश के आनंद की स्मृति ही मुझे भूल जाए। फिर एक दिन पिंजड़े से मुक्त भी हो गया तो भी क्या होगा! क्योंकि स्वतंत्रता तो केवल वे ही जानते हैं, जिनके प्राणों में स्वतंत्रता का अनुभव और आनंद है। अकेले स्वतंत्र होने से ही कोई स्वतंत्रता को नहीं जान लेता है। अकेले खुले आकाश में छूट जाने से ही कोई स्वतंत्र नहीं हो जाता है। उस पक्षी को डर था, कहीं परतंत्र रहते-रहते परतंत्रता का मैं आदी न हो जाऊं! वह बहुत चिंता में था कि कैसे मुक्त हो सकूं।
एक दिन सुबह एक फकीर को गीत गाते उस पक्षी ने सुना। फकीर गीत गाता था। जिन्हें मुक्त होना है, उन्हें एक ही रास्ता है-और वह रास्ता है सत्य। जिन्हें स्वतंत्र होना है, उनके लिए एक ही द्वार है--वह द्वार है सत्य। और सत्य क्या है?
उस फकीर ने अपने गीत में कहा, कि सत्य वह है, जो दिखाई पड़ता है। जैसा दिखाई पड़ता है, उसे वैसा ही देखना, वैसा ही जानना, वैसा ही जीने की कोशिश करना, वैसा ही अभिव्यक्त करना सत्य है। और जो सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं।
उसके गीत का यह अर्थ। सड़कों पर गाते वह गुजरता था। मनुष्यों ने तो नहीं सुना, लेकिन उस पक्षी ने सुन लिया। क्योंकि पक्षियों को अभी खुले आकाश का अनुभव है। मनुष्यों को तो खुले आकाश का सारा अनुभव भूल गया! क्योंकि पक्षियों को भी अपने पंख उड़ने के लिए हैं--ये पता है। मनुष्य को तो पता ही नहीं कि उसके पास भी पंख हैं और वे भी उड़ सकता है--किसी आकाश में। सुना तो मनुष्यों ने भी, लेकिन वे नहीं सुन पाए। सिर्फ सुनने से कोई नहीं सुन पाया। अकेले सुनने से ही अगर आदमी सुन लेता होता तो अब तक सारे मनुष्य कभी के मुक्त हो गये होते।
महावीर भी चिल्लाते हैं, बुद्ध भी चिल्लाते हैं, क्राइस्ट भी चिल्लाते हैं, कृष्ण भी चिल्लाते हैं, सुनता कौन है!
वह फकीर गांव में चिल्लाता रहा, सुना एक पक्षी ने, आदमियों ने नहीं!

2

और उस पक्षी ने उसी दिन सत्य का एक छोटा सा प्रयोग किया। सम्राट महल
के भीतर था, कोई मिलने आया था। पहरेदारों से सम्राट ने कहलवाया, कि कह दो कि सम्राट घर पर नहीं। उस पक्षी ने चिल्लाकर कहा कि नहीं, सम्राट घर पर है। और यह सम्राट ने ही कहलवाया है पहरेदारों से कि कह दो मैं घर पर नहीं हूं।
सम्राट तो बहुत नाराज हुआ।
सत्य से सभी लोग नाराज होते हैं। क्योंकि सभी लोग असत्य में जीते हैं। और वे जो सम्राट हैं-चाहे सत्ता के, चाहे धन के, चाहे धर्मों के, जिनके हाथों में किसी तरह की सत्ता है, वे तो सत्य से बहुत नाराज होते हैं।
क्योंकि सत्ता हमेशा असत्य के सिंहासन पर विराजमान होती है। इसलिए सत्ताधिकारी सत्य को सूली पर चढ़ा देते हैं। क्योंकि सत्य अगर जीवित रहे तो सत्ताधिकारियों की सूली बन सकता है।
सम्राट ने कहा कि इस पक्षी को तत्क्षण महल के बाहर कर दो।
महलों में सत्य का कहां निवास! वृक्षों पर बसेरा हो सकता है, लेकिन महलों में बसेरा सत्य के लिए बहुत कठिन है। वह पक्षी निकालकर बाहर कर दिया। लेकिन उस पक्षी को तो मन की मुराद मिल गई। वह आकाश में नाचने लगा। उसने कहा, ठीक कहा था उस फकीर ने कि अगर मुक्त होना है तो सत्य एक मात्र द्वार है।
वह पक्षी तो नाचता था। लेकिन एक तोता एक वृक्ष पर बैठ कर रोने लगा और कहा, पागल पक्षी, तू नाचता है सोने के पिंजड़े छोड़ कर! सौभाग्य से ये पिंजड़े मिलते हैं। ये सभी को नहीं मिलते। पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण मिलते हैं! हम तो तरसते थे उस पिंजड़े के लिए, लेकिन तू नासमझ है; पिंजड़ों में रहने की भी कला होती है!
पिंजड़े में रहने की पहली कला यह है कि मालिक जो कहे, वही कहना। मत सोचना कि वह सच है या झूठ। जिसने सोचा, वह फिर पिंजड़ों में नहीं रह सकता। क्योंकि विचार विद्रोह है और जिसके जीवन में विचार का जन्म हो जाता है, वह परतंत्र नहीं रह सकता।
तूने विचार क्यों किया पागल पक्षी? विचार करना बहुत खतरनाक है। समझदार लोग कभी विचार नहीं करते! समझदार लोग अपने कारागृहों में रहते हैं और अपने कारागृह को ही भवन समझते हैं, मंदिर समझते हैं! अगर ज्यादा ही तकलीफ थी तो भीतर से अपने पिंजड़े के सींकचों को सजा लेना था। सजाया हुआ पिंजड़ा घर जैसा मालूम पड़ने लगता! ध्यान रहे, अनेक लोग पिंजड़ों को सजा कर घर समझते रहते हैं। जैसे मैंने सजा लिया। लेकिन सजाने की चीज है, मगर सच नहीं कहता।
उस पक्षी ने तो सुना ही नहीं, वह तो खुशी से नाच रहा था, उसके पंख हवाओं में डोल रहे थे! खुले आकाश में आ गए!
लेकिन उस तोते ने कहा कि अगर पिंजड़े में रहने का मजा लेना है तो तोतों
से कला सीखो। हम वही कहते हैं, जो मालिक कहते हैं। हम कभी नहीं कहते, जो सच है। हम इसकी चिंता ही नहीं करते हैं कि सत्य क्या है। हम तो कहते हैं, जो मालिक कहता है--यही हम को सच है। मालिक क्या करता है, यह नहीं कहना है। अपनी आंख से देखना नहीं, अपने विचार से सोचना नहीं। मालिक की आंख से देखना और मालिक के विचार से सोचना। तोता यह सब चिल्लाता रहा! और खुले पिंजड़े में जहां से पक्षी छूट गया था, तोता जाकर भीतर बैठ गया! पिंजड़े को द्वारपाल ने बंद कर दिया।
वह तोता अब भी उस महल के पिंजड़े में है। अब वह वही करता है, जो मालिक कहते हैं। वह सदा वहीं बंद रहेगा, क्योंकि मुक्त होने का एक ही रास्ता है-- सत्य। और तोते और सब-कुछ बोलते हैं, लेकिन सत्य कभी नहीं बोलते।
और तोते तो ठीक ही हैं, यहां आदमियों में भी तोतों की इतनी बड़ी तादाद है, जिसका कोई हिसाब नहीं! ये तोते भी वही बोलते हैं, जो मालिक कहते हैं। हजारों-हजारों साल से, ये वही बोलते चले जाते हैं, जो मालिक कहते हैं! शास्त्रों के नाम पर तोते बैठ गए हैं, संप्रदायों के नाम पर तोते बैठ
गए हैं, मंदिरों के नाम पर तोते बैठ गए हैं! सारी दुनिया, सारी आदमियत तोतों की आवाज से परेशान है। उन्हीं की आवाज सुन-सुन कर हम सब भी धीरे-धीरे तोते हो जाते हैं! और हमें पता भी नहीं रहता कि खुला आकाश भी है, हमारे पास पंख भी हैं, आत्मा भी है, मुक्ति भी है!

अगर परतंत्रता में शांति से जीना हो तो कभी सत्य का नाम भी मत लेना।
अगर परतंत्रता को ही जीवन समझना हो तो सत्य की तरफ कभी आंख मत उठाना। और अगर कोई आदमी सत्य की बातें करे तो उसे दुश्मन समझना, क्योंकि सत्य खतरनाक है, क्योंकि सत्य स्वतंत्रता की तरफ ले जाता है।
स्वतंत्रता में बड़ी असुरक्षा है। परतंत्रता में बड़ी सुरक्षा है।
कहां, पिंजड़े की कितनी सुरक्षा है--न आंधी-पानी का कोई भय है, न आकाश में उठते हुए तूफानों का कोई डर है, न बरसते हुए बादल, न कड़कती हुई बिजलियां। नहीं, कोई भय नहीं है।
पिंजड़े के भीतर आदमी बिल्कुल सुरक्षित है। खुले आकाश में बड़े भय हैं। छोटा सा पक्षी और इतना बड़ा आकाश! तूफान भी उठते हैं, वहां आंधियां भी आती हैं, कोई बचाने वाला भी नहीं, कोई सुरक्षा भी नहीं।
परतंत्रता बड़ी सुरक्षित है, परतंत्रता बड़ी सिक्योर्ड है, स्वतंत्रता बहुत असुरक्षित, स्वतंत्रता बड़ी इनसिक्योर्ड है। इसीलिए तो अधिक लोग परतंत्र होने को राजी हो गए हैं!
सुरक्षा चाहते हों तो अपने मन में पूछ लेना कि परतंत्रता चाहते हो? अगर सुरक्षा चाहते हों तो सत्य की बात भी मत करना। सुरक्षा चाहते हों तो परतंत्रता ही ठीक है। राजनीतिक की परतंत्रता हो या धर्मों की; अर्थ की परतंत्रता हो कि शब्द की; जिसको सुरक्षा चाहिए, उसे परतंत्रता ही ठीक है। और हम तो यहां इन तीन दिनों में सत्य की खोज का विचार करने बैठे हैं।
यह खोज उनके लिए नहीं है, जो सुरक्षित जीवन को सब-कुछ मान लेते हैं। यह खोज उनके लिए है, जिनसे प्राणों में असुरक्षित होने का भय नहीं। यह खोज उनके लिए है, जो अपने उड़ने के पंखों को नहीं भूल गए हैं और जो आकाश को नहीं भूल गए हैं और जिनके प्राणों में कहीं कोई स्मृति चोट मारती रहती है कि तोड़ दो सब बंधन, तोड़ दो सब दीवारें, उड़ जाओ वहां, जहां कोई दीवार नहीं, जहां कोई बंधन नहीं।
लेकिन कितने थोड़े लोग हैं ऐसे? लाख-लाख आंखों में झांको--कभी किसी एक आंख में स्वतंत्रता की प्यास दिखाई पड़ती है। लाख-लाख आदमियों के प्राणों को खटखटाओ, किसी एकाध प्राण से सत्य की कोई झंकार सुनाई पड़ती है। सारी मनुष्यता को क्या हो गया है?
इस सारी मनुष्यता ने सुरक्षित होने को ही सब कुछ मान लिया है! सुरक्षा
ही हमारा धर्म है--बस किसी तरह सुरक्षित रह लें, और जी लें और समाप्त हो जाएं!
मैंने सुना है, एक सम्राट ने एक महल बनवाया था। और महल उसने इतना सुरक्षित बनवाया था कि उस महल में किसी दुश्मन के आने की कोई संभावना नहीं थी।
हम सब भी इसी तरह के महल जीवन में बनाते हैं, जिसमें कोई दुश्मन न आ सके। जिसमें हम बिल्कुल सुरक्षित रह सकें। आखिर आदमी जीवन भर करता क्या है? धन किसके लिए कमाता है? ताकि सुरक्षित हो जाए। पद किसलिए कमाता है? ताकि सुरक्षित हो जाए। यश किसलिए कमाता है? ताकि सुरक्षित हो जाए। ताकि जीवन में कोई भय न रह जाए, जीवन निर्भय हो जाए। लेकिन मजा यही है और रहस्य भी यही है कि जितनी सुरक्षा बढ़ती है, उतना ही भय बढ़ता चला जाता है।
उस सम्राट ने भी सब कुछ जीत लिया था। अब एक ही डर रह गया था कि कभी कोई दुश्मन... क्योंकि जो भी दूसरों को जीतने निकलता है, वह दुश्मन बना लेता है। दूसरों को जीतने निकलने वाला आदमी धीरे-धीरे सबको दुश्मन बना लेता है। हां, जो दूसरों से हारने को तैयार हो, वही केवल इस जगत में मित्र बन सकता है।
उसने सारी दुनिया को जीतना चाहा था तो सारी दुनिया दुश्मन हो गई थी। सारी दुनिया दुश्मन हो गई थी तो भय बढ़ गया था। भय बढ़ गया था तो सुरक्षा का आयोजन करना जरूरी था। उसने बड़ा महल बनवाया। उस महल में केवल एक दरवाजा रखा, खिड़की भी नहीं, द्वार भी नहीं, कोई और कुछ रंध्र भी नहीं, कि कहीं कोई दुश्मन भीतर न आ जाए! एक दरवाजा, बड़ा महल और इस दरवाजे पर हजारों नंगी तलवारों का पहरा था।
पड़ोस का राजा उसके सुरक्षित महल को देखने आया। दूर-दूर तक खबर पहुंच गई। पड़ोस का राजा भी देख कर बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहाः बहुत आनंदित

हुआ। मैं भी ऐसा ही महल जाकर शीघ्र बनवाता हूं। यह तो बिल्कुल सुरक्षित है, इसमें तो कोई खतरा नहीं।
जब पड़ोस का राजा विदा ले रहा था, अपने रथ पर सवार हो रहा था और वहीं का मालिक उसे विदा कर रहा था तब फिर उसने दोबारा उस पड़ोसी राजा ने कहा बहुत खुश हुआ हूं, तुम्हारी समझ-सूझ को देख कर, तुमने अदभुत बात कर ली है। कोई राजा कभी इतना सुरक्षित महल नहीं बना पाया है। मैं भी जल्दी जाकर ऐसा ही महल बनवाता हूं। तभी सड़क के किनारे बैठा एक बूढ़ा भिखारी जोर से हंसने लगा! उस भवन के मालिक ने कहाः पागल, तू क्यों हंस रहा है? क्या बात है?
उस बूढ़े भिखारी ने कहाः मालिक आज मौका आ गया तो मैं कह दूं--कई दिन से यहां बैठा हूं कि आप द्वार पर मिल जाएंगे तो आपसे कह दूंगा। एक भूल रह गई है इस महल में। और तो सब ठीक है, एक दरवाजा है, यही गलती है। इससे दुश्मन भीतर जा सकता है। आप भीतर हो जाएं और इस दरवाजे को भी चिनवा लें तो आप बिल्कुल सुरक्षित हो जाएंगे। फिर कभी कोई दुश्मन भीतर प्रवेश नहीं कर सकता।
उस सम्राट ने कहाः पागल, अगर मैं दरवाजे को भी चिनवा लूं और भीतर हो जाऊं तो यह महल नहीं कब्र हो जाएगी?
उस फकीर ने कहाः कब्र यह हो गया है, सिर्फ एक दरवाजा बचा है, उतनी ही कमी है कब्र होने में, उसको भी पूरा कर लें। एक दरवाजा है, दुश्मन घुस सकता है। दुश्मन नहीं तो कम से कम मौत, मौत तो एक दरवाजे से भीतर चली जाएगी। आप ऐसा करें कि भीतर हो जाएं, फिर मौत भी नहीं जा सकती।
लेकिन उस राजा ने कहाः जाने का सवाल नहीं, मौत के जाने के पहले मैं मर जाऊंगा!
उस फकीर ने कहाः तो फिर ठीक से समझ लें। जितने ज्यादा दरवाजे थे इस महल में, उतना ही जीवन था आपके पास। जितने दरवाजे कम हुए, उतना जीवन कम हो गया। अब एक दरवाजा बचा है, थोड़ा-सा जीवन बचा है। इसको भी बंद कर दें, वह भी समाप्त हो जाए। इसलिए कहता हूं, एक भूल रह गई है इसमें।
और फिर वह जोर-जोर से हंसने लगा। कहने लगा, महाराज कभी मेरे पास भी महल थे। फिर मैंने यह अनुभव किया कि महल कारागृह बन जाते हैं, तो धीरे-धीरे दरवाजे बड़ा करता गया, सब दीवारें अलग करता गया। फिर यह ख्याल आया कि चाहे कितने ही दरवाजे कम करूं, ज्यादा करूं, दीवारें तो रह ही जाएंगी। तो फिर मैं दीवारों के बाहर ही निकल आया। अब खुले आकाश में हूं और अब पूरी तरह जीवित हूं।
लेकिन हम सबने भी अपनी-अपनी सामर्थ्य से अपनी-अपनी दीवारें बना ली हैं। और वे जो दीवारें दिखती हैं--पत्थर और मिट्टी की दीवारें, वे इतनी खतरनाक नहीं हैं, क्योंकि दिखाई पड़ती हैं। और बारीक दीवारें हैं और सूक्ष्म दीवारें हैं। और पारदर्शी, ट्रांसपेरेंट, जो दिखाई नहीं पड़तीं, कांच की दीवारें हैं। विचार की दीवारें हैं, सिद्धांतों की, शास्त्रों की दीवारें हैं--वे बिल्कुल दिखाई नहीं पड़तीं। वे हमने अपनी आत्मा के चारों तरफ खड़ी कर ली, ताकि हम सुरक्षित अनुभव करें!
और जितनी ज्यादा ये दीवारें हमने अपनी आत्मा के पास इकट्ठी कर ली हैं, उतने ही हम सत्य के खुले आकाश से दूर हो गए। फिर तड़पते हैं प्राण, छटपटाती है आत्मा। लेकिन जितनी छटपटाती है, उतनी ही हम दीवारें मजबूत करते चले जाते हैं। डर लगता है--शायद यह घबड़ाहट, यह छटपटाहट, दीवारों की कमी के कारण तो नहीं है? दीवारों के कारण ही है।
आदमी की आत्मा जब तक परतंत्र है, तब तक कभी आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकती।
परतंत्रता के अतिरिक्त और कोई दुख नहीं।
और ध्यान रहे जो परतंत्रता दूसरा व्यक्ति आपके ऊपर थोपता है, वह परतंत्रता कभी वास्तविक नहीं होती। जो परतंत्रता दूसरा थोपता है, वह बाहर से ज्यादा नहीं होती है, वह आपके भीतर कभी नहीं पहुंचती। लेकिन जो परतंत्रता आप स्वयं स्वीकार कर लेते हैं, वह आपकी आत्मा तक प्रविष्ट हो जाती है। और हमने बहुत तरह की परतंत्रताएं स्वयं स्वीकार कर ली हैं! किसने कहा आपसे कि आप हिंदू हैं? किसने कहा आपसे कि आप मुसलमान हैं?
और किसने कहा कि गांधी से बंध जाओ? और किसने कहा कि बुद्ध से बंध जाओ? और

किसने कहा कि मार्क्स से बंध जाओ? किसने कहा बंधने के लिए? नहीं, किसी ने नहीं, आप ही अपने हाथ से बंध गए हैं! कौन बांधता है गीता से? कौन बांधता है कुरान से? कौन बांधता है बाइबिल से? कोई नहीं, आप अपने हाथ ही बंध गए हैं! कुछ गुलामियां हैं, जो दूसरे हम पर थोपते हैं। कुछ गुलामियां हैं, जो
हम खुद स्वीकार कर लेते हैं! जो गुलामियां दूसरे हम पर थोपते हैं, वे हमारे शरीर से ज्यादा और गहराई तक नहीं जाती हैं। लेकिन जो गुलामियां हम स्वीकार कर लेते हैं, वे हमारी आत्मा तक को बांध लेती हैं! और ऐसे हम सब परतंत्र हैं।
इस परतंत्र चित्त को लेकर सत्य की खोज कैसे हो सकती है? इस बंधे हुए चित्त को लेकर यात्रा कैसे हो सकती है? इस सब तरफ से जंजीरों से भरे हुए प्राणों को लेकर कहां उठेंगे आकाश की तरफ? बहुत भारी जंजीरें हैं!
वृक्ष बंधे हैं जमीन से, क्योंकि उनकी जड़ें जड़ी हैं जमीन में। आदमी चलते-फिरते मालूम पड़ते हैं, झूठ है उन सबका चलना। क्योंकि उनकी आत्मा की जड़ें वृक्षों से भी ज्यादा जमीन के भीतर घुसी हैं। वह जमीन परंपरा की है, वह जमीन समाज की है। उस जमीन में हमारी आत्मा की जड़ें कसी हुई हैं। वहां से जब तक अपरूटेड, जब तक जड़ें उखड़ न जाएं, अपरूटेड न हो जाएं, वहां से जब तक जंजीरें टूट न जाएं, तब तक सत्य की कोई यात्रा नहीं हो सकती।
सत्य की यात्रा के पहले सूत्र की आज आपसे बात करना चाहता हूं। और वह
यह कि ठीक से यह अनुभव कर लेना कि हम एक गुलाम हैं। आदमी एक गुलाम हैं। किसका? अपनी ही मूढ़ता का, अपनी ही जड़ता का, अपने ही अज्ञान का, अपनी ही नासमझी का।
हम अपने ही कारण गुलाम हैं और यह गुलामी हमें बहुत स्पष्ट रूप से अनुभव हो जानी चाहिए, तो ही हम इसे तोड़ने के लिए कुछ कर सकते हैं।
सबसे अभागा गुलाम वह होता है, जिसे यह पता ही नहीं होता कि मैं गुलाम हूं! सबसे अभागा गुलाम वह होता है, जो समझता है कारागृह को अपना घर! सबसे बड़ा गुलाम वह होता है, जो जंजीरों को आभूषण समझ लेता है! क्योंकि जब जंजीर आभूषण समझ ली जाती है, तब उसे हम तोड़ते नहीं, संभालते हैं।
मैंने सुना है एक जादूगर था और वह जादूगर भेड़ों को बेचने का काम करता था। भेड़ें पाल रखी थीं उसने, और उनको बेचता था, उनके मांस को बेचता था। उनकी हत्या करता, उन्हें खिला-पिला कर मोटा करता था, जब वे भेड़ें चरबी-मांस से भर जातीं, तब उनको काट कर बेच देता था। लेकिन उसने सारी भेड़ों को बेहोश करके एक बात सिखा दी थी। वह बहुत होशियार आदमी रहा होगा। उसने उन सारी भेड़ों को बेहोश करके, हिप्नोटाइज करके एक बात सिखा दी कि तुम सब भेड़ नहीं हो, शेर हो। वे सारी भेड़ें अपने को शेर समझती थीं! हालांकि दूसरी भेड़ों को हर भेड़ समझती थीं, खुद को शेर समझती थीं! इसलिए दूसरी भेड़ें जब कटती थीं, तब अपने मन में सोचती थीं, हम तो शेर हैं, हमारे कटने का तो कोई सवाल ही नहीं है। जो भेड़ हैं, वह कटते हैं, वह कट रहे हैं।
और इसलिए हर रोज भेड़ें कटती जाती थीं, लेकिन बाकी भेड़ों को जरा भी चिंता सवार नहीं होती थी! वे अपने को शेर ही समझती चली जाती थीं! जब उनकी काटने की बारी आती थी, तभी पता चलता था कि बुरा हुआ। लेकिन तब बहुत समय बीत चुका होता था, तब कुछ भी नहीं किया जा सकता था। भागने का वक्त निकल चुका था। अगर उन्हें दूसरी भेड़ों को कटते देख कर ख्याल में उन्हें आ गया होता कि हम भी भेड़ हैं तो शायद वे भेड़ें भाग गई होतीं। उन्होंने बचाव का कोई उपाय कर लिया होता। लेकिन उनको यह भ्रम था कि हम शेर हैं। जब भेड़ अपने को शेर समझ ले, तब उससे कमजोर भेड़ खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है, क्योंकि उसे यह ख्याल ही मिट गया कि मैं भेड़ हूं।
उस जादूगर से किसी ने कहा कि तुम्हारी भेड़ें भागती नहीं? उसने कहा, मैंने उनके साथ वही काम किया, जो हर आदमी ने अपने साथ कर लिया है! जो हम नहीं हैं, वही हमने समझ लिया है! जो ये नहीं हैं, वही मैंने इनको समझा दिया है।
हर आदमी अपने को समझता है कि मैं स्वतंत्र हूं! इससे बड़ा झूठ और कुछ भी नहीं हो सकता। और जब तक आदमी यह समझता रहता है कि मैं स्वतंत्र हूं, मैं एक स्वतंत्र आत्मा हूं, तब तक, तब तक वह आदमी स्वतंत्रता की खोज में कुछ भी नहीं करेगा।

इसलिए पहला सत्य समझ लेना जरूरी है कि हम परतंत्र हैं। हम का मतलब पड़ोसी नहीं, हम का मतलब मैं। हम का मतलब यह नहीं कि और लोग जो मेरे आस-पास बैठे हों। वे नहीं, मैं।
मैं एक गुलाम हूं और इस गुलामी की जितनी पीड़ा है, उस पूरी पीड़ा को अनुभव करना जरूरी है। इस गुलामी के जितने आयाम हैं, जितने डायमेंशंस हैं, जितनी दिशाओं से यह गुलामी पकड़े हुए है, उन दिशाओं को भी अनुभव कर लेना जरूरी है। किस-किस रूप में यह गुलामी छाती पर सवार है, उसे समझ लेना जरूरी है। इस गुलामी की क्या-क्या कड़ियां हैं, वे देख लेना जरूरी है। जब तक हम इस आध्यात्मिक दासता से, स्प्रिचुअल स्लेवरी से पूरी तरह परिचित नहीं हो जाते, तब तक इसे तोड़ा भी नहीं जा सकता।
अगर कोई कैदी किसी कारागृह से भागना चाहे तो सबसे पहले क्या करेगा? सबसे पहले तो उसे यह समझना होगा कि मैं कैदी हूं, कारागृह में हूं। और दूसरी बात यह करनी पड़ेगी कि कारागृह की एक-एक दीवार, एक-एक कोने से परिचित होना पड़ेगा, क्योंकि जिस कारागृह से निकलना हो, उससे बिना परिचित हुए कोई कभी नहीं निकल सकता। जिस कारागृह से निकल जाना है, उस कारागृह का परिचय जरूरी है। उससे जो जितना ज्यादा परिचित होगा, उतना ही आसानी से कारागृह से बाहर हो सकता है।
इसलिए कारागृह के मालिक कभी भी कैदी को कारागृह की दीवारों से, कोनों
से परिचित नहीं होने देते। कारागृह से परिचित कैदी खतरनाक है। वह कभी भी कारागृह से बाहर आ सकता है। क्योंकि ज्ञान सदा मुक्त करता है। कारागृह का ज्ञान भी मुक्त करता है। इसलिए कारागृह से परिचित होना बहुत खतरनाक है मालिकों के लिए।
और कारागृह से अगर अपरिचित रखना हो कैदी को तो सबसे पहली तरकीब यह है
कि उसे समझाओ कि यह कारागृह नहीं है, भगवान का मंदिर है! यह कारागृह है ही नहीं! और उसे समझाओ कि तुम कैदी नहीं हो, तुम तो एक स्वतंत्र व्यक्ति हो! और उसे समझाओ कि इतनी ही तो दुनिया है, जितनी इस दीवार के भीतर दिखाई पड़ती है! इसके बाहर कोई दुनिया ही नहीं है, बाहर कोई दुनिया ही नहीं है। बस यही सब-कुछ है! और उसे समझाओ, कि अगर तकलीफ होती है तो दीवारों को लीपो, पोतो, साफ करो। दीवारें गंदी है, इसलिए तकलीफ होती है। दीवारों को साफ-सुथरा करो--कारागृह की दीवारों को। और अगर तकलीफ होती है तो उसका मतलब है बगीचा लगाओ कारागृह के भीतर, फूल-फुलवारी लगाओ; सुगंध आने लगेगी, आनंद आने लगेगा! कारागृह को सजाओ, अगर तकलीफ है तो काराग्रह को सजाओ, क्योंकि यह कारागृह नहीं है, यह तो घर है!
और जो कैदी इन बातों को मान लेगा, वह कैदी कभी मुक्त हो सकता है? उसके मुक्त होने का सवाल ही मिट जाता है। और हमने ऐसी ही बातें मान ली हैं! पहली तो बात हमें यह स्मरण ही नहीं कि हम कारागृह में बंद है। जन्म के बाद मृत्यु तक हम न मालूम कितनी तरह के कारागृहों में बंद हैं। सब तरफ दीवालें हैं, लेकिन दीवालें कारागृह की नहीं हैं। जब एक हिंदू कहता है कि मैं हिंदू हूं। जब एक मुसलमान कहता है कि मैं मुसलमान हूं, तो वह इस तरह नहीं कहता कि मैं मुसलमान की दीवार के भीतर बंद हूं। वह अकड़ से कहता है, जैसे मुसलमान, होना, हिंदू होना, जैन होना कोई बड़ी कीमत की बात है! जब एक आदमी कहता है, मैं भारतीय हूं और एक आदमी कहता है कि मैं चीनी हूं, तो बहुत अकड़ से कहता है! उसे पता भी नहीं कि ये भी दीवारें हैं और रोकती है बड़ी मनुष्यता से मिलने में।
जो भी चीज रोकती है, वह दीवाल है।
अगर मैं आपसे मिलने में रुकता हूं तो जो भी चीज बीच में खड़ी है, वह दीवाल है। हिंदू-मुसलमानों के बीच कोई रोकता है तो दीवार है। हिंदुस्तानी और चीनी के बीच अगर कोई रोकता है तो दीवाल है। अगर शूद्र और ब्राह्मण के बीच मिलने में बाधा पड़ती है तो कोई दीवाल है--चाहे व दिखाई पड़ती हो या दिखाई नहीं पड़ती हो। जहां भी बीच में मिलन में कोई चीज आड़े आती हो, वह दीवार है।
और आदमी-आदमी के आस-पास कितनी दीवालें हैं, कितनी तरह की दीवालें हैं! लेकिन वे दीवालें ट्रांसपेरेंट हैं, कांच की दीवारें हैं, उनके आर-पार दिखाई पड़ता है। तो हमें शक नहीं होता कि दीवाल बीच में है। पत्थर की दीवाल

के आर-पार दिखाई नहीं पड़ता। हिंदू और मुसलमान की दीवार के आर-पार दिखाई पड़ता है। उस दिखाई पड़ने के कारण ख्याल होता है कि कोई दीवार बीच में नहीं है। इसीलिए पारदर्शी दीवलें बड़ी खतरनाक हैं। उनके आर-पार दिखाई भी पड़ता है, लेकिन हाथ नहीं बढ़ा सकते। हिंदू की तरफ से मुसलमान की तरफ कहीं हाथ बढ़ सकता है? बीच में दीवाल आ जाएगी, हाथ यहीं मुड़कर वापस लौट आएगा। शूद्र का और ब्राह्मण के बीच कोई मिलन हो सकता है? कोई मिलन वहां नहीं है।
लेकिन यह हमें ख्याल में नहीं आता कि हमारे कारागृह हैं। सिद्धांतों
की दीवालें हैं। हमें ख्याल ही नहीं कि हर आदमी अपने-अपने सिद्धांतों में बंद होकर बैठ जाता है, फिर उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।
रूस में वे समझाते हैं कि ईश्वर नहीं है। वहां का बच्चा यही सुन कर बड़ा होता है कि ईश्वर नहीं है। उसकी आत्मा के चारों तरफ एक लक्ष्मण-रेखा खिंच जाती है--ईश्वर नहीं है। अब वह इसी लक्ष्मण-रेखा के भीतर जीवन भर जीएगा कि ईश्वर नहीं है। और जब भी दुनिया को देखेगा तो इसी घेरे के भीतर से देखेगा कि ईश्वर नहीं है। अब इस घेरे को लेकर ही वह चलेगा!
ये जो बाहर के कारागृह हैं, इनके भीतर आपको बंद होना पड़ता है, इनको लेकर आप नहीं चल सकते। ये जो आत्मा के कारागृह हैं, ये बहुत अदभुत हैं! आप जहां भी जाइए, ये आपके चारों तरफ चलते हैं, ये आपके साथ ही चलते हैं!
अब जिस आदमी के दिमाग में यह ख्याल बैठ गया कि ईश्वर नहीं है, अब यह आदमी इसी ख्याल की दीवार में बंद जिंदगी भर जीएगा इसे कहीं भी। ईश्वर दिखाई नहीं पड़ सकता, क्योंकि आदमी को वही दिखाई पड़ सकता है, जो देखने की उसकी तैयारी हो। और इस आदमी के देखने की तैयारी कुंठित हो गई, बंद हो गई, इस आदमी ने तय कर लिया कि ईश्वर नहीं है। अब इसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन आप कहेंगे कि इससे तो हम बेहतर हैं, जो मानते हैं कि ईश्वर है!
हम भी उतनी ही बदतर हालत में हैं। क्योंकि जिस आदमी ने तय कर लिया है कि ईश्वर है। अब वह फिर कभी आंख उठा कर खोज भी नहीं करेगा कि वह कहां है? मान कर बैठ गया कि "है" और खत्म हो गया! अब वह समझ रहा कि "है" बात खत्म हो गई! अब और क्या करना है?
जिसने मान लिया कि है, वह "है" में बंद हो जाता है! जिसने मान लिया कि "नहीं है", वह "नहीं है" में बंद हो जाता है! एक नास्तिकता में बंद हो जाता है, एक आस्तिकता में बंद हो जाता है! दोनों की अपनी खोल है!
लेकिन सत्य की खोज वह आदमी करता है, जो कहता है, मैं खोल क्यों बनाऊं? मुझे अभी पता ही नहीं है कि "है" या "नहीं।" मैं कोई खोल नहीं बनाता। मैं बिना खोल के, बिना दीवार के खोज करूंगा, मुझे पता नहीं है। इसलिए मैं किसी सिद्धांत को अपने साथ जकड़ने को राजी नहीं हूं। किसी भी तरह का सिद्धांत आदमी को बांध लेता है और सत्य की खोज मुश्किल हो जाती है।
एक फकीर एक गांव में ठहरा हुआ था। उस गांव के लोगों ने उस फकीर को कहा
कि तुम आकर हमें नहीं बताओगे क्या कि ईश्वर है या नहीं? उस फकीर ने कहाः ईश्वर! ईश्वर से तुम्हें क्या प्रयोजन हो सकता है? अपना काम करो। ईश्वर से किसी को भी कोई प्रयोजन नहीं है। अगर ईश्वर से कोई प्रयोजन होता तो यह दुनिया बिल्कुल दूसरी दुनिया होती। यह ऐसी दुनिया नहीं हो सकती--इतनी कुरूप, इतनी गंदी, इतनी बेहूदी!
जहां ईश्वर से हमारा प्रयोजन होता तो हमने यह सारी दुनिया और तरह की
कर ली होती। लेकिन इस सब से हमें कोई प्रयोजन नहीं। वे जो मंदिरों में बैठे हैं, उन्हें भी नहीं है। वे जो पुजारी और साधु, संन्यासियों का गिरोह और जत्था खड़ा हुआ है--उन्हें भी नहीं है। वे जो लोग नारियल फोड़ रहे हैं दीवारों के सामने, पत्थरों के सामने, उन्हें भी नहीं है।
अगर ईश्वर से हमें मतलब होता तो यह दुनिया बिल्कुल दूसरी हो गई होती। क्योंकि ईश्वर से मतलब रखने वाली दुनिया इतनी गंदी और कुरूप नहीं हो सकती।
उस फकीर ने कहाः क्या मतलब है तुम्हें ईश्वर से? अपना काम-धाम देखो, बेकार समय मत गंवाओ। लेकिन वे लोग नहीं माने। उन्होंने कहाः आज छुट्टी का दिन है और आप जरूर चलें। फकीर ने कहा, अब मैं समझा, चूंकि छुट्टी का दिन है, इसलिए ईश्वर की फिकर करने आए हो!

छुट्टी के दिन लोग ईश्वर की ही फिकर करते हैं! क्योंकि जब कोई काम नहीं होता और आदमी से बेकाम नहीं बैठे रहा जाता तो कुछ न कुछ करता है! ईश्वर के लिए कुछ करता है! बेकाम आदमी कुछ न कुछ करता है-माला ही फेरता है! उस फकीर ने कहाः अच्छा, छुट्टी का दिन है, तब ठीक है, मैं चलता हूं। लेकिन, लेकिन ईश्वर के संबंध में कहूंगा क्या? क्योंकि ईश्वर के संबंध में तो आज तक कुछ भी नहीं कहा जा सका। जिन्होंने कहा है, उन्होंने गलती की। जो जानते थे, वे चुप रह गए। अब मैं मूर्ख बनूंगा, अगर मैं कुछ कहूं। क्योंकि उससे सिद्ध होगा कि मैं नहीं जानता हूं। और तुम कहते हो कि कुछ कहो!
खैर, मैं चलता हूं। वह मस्जिद में गया। उस गांव के लोगों ने बड़ी भीड़ इकट्ठी कर ली। भीड़ को देख कर बड़ा भ्रम पैदा होता है।
ईश्वर को समझने के लिए भीड़ इकट्ठी हो जाए तो भ्रम पैदा होता है कि लोग ईश्वर को समझना चाहते हैं!
उस फकीर ने कहाः इतने लोग ईश्वर में उत्सुक हैं तो मैं एक प्रश्न पूछ लूं पहले, तुम ईश्वर को मानते हो? ईश्वर है? सारे गांव के लोगों ने हाथ उठा दिया ऊपर कि हम ईश्वर को मानते हैं, ईश्वर है। उस फकीर ने कहा, फिर बात खत्म। जब तुम्हें पता ही है, तो मेरे बोलने की अब कोई जरूरत नहीं। मैं वापस जाता हूं।
गांव के लोग मुश्किल में पड़ गए। अब कुछ उपाय भी न था। कह चुके थे, जानते तो नहीं थे। लेकिन कह चुके थे कि जानते हैं, हाथ हिला दिया था। अब एकदम इनकार करेंगे तो ठीक भी नहीं है।
कौन जानता है? आप जानते हैं? लेकिन अगर कोई पूछेगा ईश्वर है? तो आप भी हाथ उठा देंगे। ये हाथ झूठ हैं। और जो आदमी ईश्वर के सामने तक झूठ बोलता है, उसकी जिंदगी में अब सच का कोई उपाय नहीं हो सकता। जो ईश्वर के लिए तक झूठी गवाही दे सकता है कि हां, मैं जानता हूं--"ईश्वर है"! और उसे कोई भी पता नहीं! उसकी जिंदगी में कहीं कोई किरण नहीं उतरी ईश्वर की। उसकी जिंदगी में क हीं कोई चिराग नहीं जला ईश्वर का। उसकी जिंदगी में कभी कोई प्रार्थना नहीं आई ईश्वर की। उसकी जिंदगी में कभी कोई फूल नहीं खिला ईश्वर का और वह कहता है कि हां "ईश्वर है"! और कभी भीतर नहीं देखता कि मैं सरासर झूठ बोल रहा हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है!
बाप बेटों से झूठ बोल रहे हैं! गुरु शिष्यों से झूठ बोल रहे हैं! धर्मगुरु अनुयायियों से झूठ बोल रहे हैं! और उन्हें कुछ भी पता नहीं कि वह है या नहीं! किसकी बात कर रहे हो? उनको अगर जोर से हिला दो तो उनका सब ईश्वर बिखर जाएगा। भीतर से कहीं कोई आवाज न आएगी कि वह है। शायद जब वह आपसे कह रहे हैं कि "है"--तभी उनके भीतर कोई कह रहा है कि अजीब बात कर रहे हो, पता तो तुम्हें बिल्कुल नहीं।
उस फकीर ने कहा कि जब तुम्हें पता ही है तो बात खत्म हो गई। लेकिन मैं हैरान हूं कि इस गांव में ईश्वर को जानने वाले इतने लोग हैं, यह गांव दूसरी तरह का हो जाना चाहिए था! लेकिन तुम्हारा गांव वैसा ही है, जैसे मैंने दूसरे गांव देखे।
गांव के लोग बहुत चिंतित हुए। उन्होंने कहाः अब क्या करें? उन्होंने कहाः अगली बार फिर हम चलें। अगले शुक्रवार को उन्होंने फिर फकीर के पैर पकड़ लिए और कहा आप चलें और ईश्वर को समझाएं।
उसने कहाः लेकिन मैं पिछली बार गया था और तुम्हीं लोगों ने कहा था कि ईश्वर को तुम जानते हो। बात खत्म हो गई, अब उसके आगे बताने को कुछ भी नहीं बचता। जो ईश्वर को ही जान ही लेता है, उसके आगे जानने को कुछ बचता है फिर? उन लोगों ने कहाः महाशय वे दूसरे लोग रहे होंगे। हम गांव के दूसरे लोग हैं। आप चलिए और हमें समझाइए। हमें कुछ भी पता नहीं। ईश्वर को हम मानते ही नहीं।
उस फकीर ने कहाः धन्यवाद, तेरा परमात्मा! ये वही के वही लोग हैं। शक्लें मेरी पहचानी हुई हैं; लेकिन ये बदल गए हैं!
असल में धार्मिक आदमी के बदलने में देर नहीं लगती। धार्मिक आदमी से ज्यादा बेईमान आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। वह जरा में बदल सकता है।
दुकान पर वह कुछ और होता है, मंदिर में कुछ और हो जाता है। मंदिर में कुछ और होता है, बाहर निकलते ही कुछ और हो जाता है।

बदलने की कला सीखनी हो तो उन लोगों से सीखो, जो मंदिर जाते हैं। क्षण
भर में उनकी आत्मा दूसरी कर लेते हैं वे! फिल्मों के अभिनेता भी इतने कुशल नहीं हैं, क्योंकि वे भी सिर्फ चेहरा बदल पाते हैं, कपड़े, रंग-रोगन। लेकिन मंदिरों में जाने वाले लोग आत्मा तक को बदल लेते हैं! दुकान पर वही आदमी, उसकी आंखों में झांको, कुछ और मालूम पड़ेगा। वही आदमी मंदिर में जब माला फेर रहा हो, तब देखो तो मालूम पड़ेगा कि यह आदमी कोई और ही है! फिर घड़ी भर बाद वह आदमी दूसरा आदमी हो जाता है!
वह जो घड़ी भर पहले कुरान पढ़ रहा था मस्जिद में, इस्लाम खतरे में देख कर किसी कि छाती में छुरा भोंक सकता है! वह जो घड़ी भर पहले गीता पढ़ रहा था, घड़ी भर बाद हिंदू धर्म के लिए किसी के मकान में आग लगा सकता है। धार्मिक आदमी के बदल जाने में देर नहीं लगती! और जब तक ऐसे बदल जाने वाले आदमी दुनिया में धार्मिक समझे जाते रहेंगे; तब तक दुनिया से अधर्म नहीं मिट सकता।
उस फकीर ने कहाः धन्यवाद है भगवान, बदल गए ये लोग, ठीक है! जब दूसरे ही हैं, तो मैं चलूंगा। वह गया, वह मस्जिद में खड़ा हुआ और उसने कहा, दोस्तो, मैं फिर वही सवाल पूछता हूं, क्योंकि दूसरे लोग आज आए हुए हैं। हालांकि सब चेहरे मुझे पहचाने हुए मालूम पड़ रहे हैं। क्या ईश्वर है?
उस मस्जिद के लोगों ने कहाः नहीं है, ईश्वर बिल्कुल नहीं है। ईश्वर को
हम न मानते हैं, न जानते हैं। अब आप बोलिए।
उस फकीर ने कहाः बात खत्म हो गई। जब है ही नहीं, तो उसके संबंध में बात
भी क्या करनी है? प्रयोजन क्या है अब बात करने का? किसके संबंध में पूछते हो मित्रो? जो है ही नहीं उसके संबंध में? कौन ईश्वर? कैसा ईश्वर?
मस्जिद के लोगों ने कहाः यह तो मुसीबत हो गई। इस आदमी से पेश पाना कठिन है।
उसने कहा, जाओ अपने घर। अब कभी भूलकर यहां मस्जिद मत आना। किसलिए आते
हो यहां? जो है ही नहीं, उसकी खोज करने? और तुम्हारी खोज पूरी हो गई, क्योंकि तुम्हें पता चल गया कि वह नहीं है! खोज पूरी हो गई, तुमने जान लिया कि वह नहीं है! अब बात खत्म हो गई। अब कोई आगे यात्रा नहीं, मुझे क्षमा कर दो, मैं जाता हूं।
गांव के लोगों ने कहाः क्या करना पड़ेगा? इस आदमी से सुनना जरूरी है।
जरूर कोई राज अपने भीतर छिपाए है। यह आदमी कोई साधारण आदमी नहीं है।
क्योंकि साधारण आदमी तो बोलने को आतुर रहता है। आप मौका दो और वह बोलेगा।
और यह आदमी बोलने के मौके छोड़कर भाग जाता है। अजीब है, जरूर कुछ बात होगी, कुछ राज है, कहीं कोई मिस्ट्री, कहीं कोई रहस्य है।
फिर तीसरे शुक्रवार उन्होंने जाकर प्रार्थना की कि चलिए हमारी मस्जिद में। लेकिन उसने कहा कि मैं दो बार हो आया हूं और बात खत्म हो चुकी है। उन मस्जिद के लोगों ने कहाः आज तीसरा मामला है, आप चलिए। हम तीसरा उत्तर देने की तैयारी करके आए हैं।
उस फकीर ने कहा कि जो आदमी तैयारी करके उत्तर देता है, उसके उत्तर हमेशा झूठ होते हैं। उत्तर भी कहीं तैयार करने पड़ते हैं? तैयार करने का मतलब है कि उत्तर मालूम नहीं हैं। जिसे मालूम है, वह तैयार नहीं करता। और जिसे मालूम नहीं है, वह तैयार कर लेता है।
और ध्यान रहे, जिन-जिन बातों के उत्तर आपने तैयार किए हैं, उन-उन बातों
के उत्तर सब झूठे हैं। जिंदगी में उत्तर आते हैं, तब सच होते हैं। तैयार किए हुए उत्तर कभी सच नहीं होते। सत्य कभी तैयार नहीं किया जा सकता। सत्य आता है, झूठ तैयार किया जाता है। जो हम तैयार करते हैं, वह झूठ होता है। जो आता है, वह सत्य होता है। सत्य, आदमी तैयार नहीं करता है।
आदमी जो भी तैयार करता है, सब झूठ होता है। इसीलिए दुनिया के सारे शास्त्र, दुनिया के सारे संप्रदाय, दुनिया के सारे सिद्धांत; जो आदमी ने बनाए हैं, वे सब झूठ हैं। आदमी सत्य को नहीं बना सकता है।
सत्य तब आता है, जब आदमी का यह भ्रम टूट जाता है कि मैं सत्य को बना सकता हूं। और जब आदमी सब बनाए हुए झूठों को छोड़ देता है, तब सत्य तत्क्षण उत्तर आता है।

उस फकीर ने कहाः कि तुमने तैयार किया है उत्तर, तब तो वह निश्चित ही झूठ होगा। उस उत्तर को बिना सुने मैं कह सकता हूं कि वह झूठ है। लेकिन मैं चलूंगा।
वह तीसरी बार गया। उस गांव के लोग बड़े होशियार रहे होंगे। लेकिन होशियारी कभी-कभी महंगी पड़ती है--यह पता नहीं! होशियारी उन चीजों के मामले में बहुत महंगी पड़ जाती है, जहां होशियारी से काम नहीं चलता, जहां सादगी से, सरलता से काम चलता है। सत्य के जगत में होशियारी, कनिंगनेस काम नहीं करती।
सत्य की दुनिया में सरलता काम करती है। वहां वे जीत जाते हैं, जो सरल हैं। और वे हार जाते हैं, जो होशियार हैं।
पर गांव के लोग बड़े होशियार थे। उन्होंने बड़ी तैयारी की थी। उन्होंने कहा, आज तो फकीर को फंसा ही लेना है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि फकीरों को फांसना मुश्किल है। क्योंकि फकीर का मतलब यह है कि जिसने फंसने के सब रास्ते तोड़ दिए हैं। और, उन्हें यह भी पता नहीं कि दूसरों को फंसाने में अक्सर आदमी खुद फंस जाता है।
खैर, वह फकीर पहुंच गया और उसने कहाः दोस्तो, फिर वही सवाल, ईश्वर है
या नहीं!
आधे मस्जिद के लोगों ने हाथ उठाए और कहा कि ईश्वर है और आधे मस्जिद के लोगों ने हाथ उठाए और कहा कि ईश्वर नहीं है। अब हम दोनों उत्तर देते हैं। अब आप बोलिए?
उस फकीर ने हाथ जोड़े आकाश की तरफ और कहाः भगवान बड़ा मजा है इस गांव में। और कहाः पागलो, जब तुम आधों को पता है और आधों को पता नहीं है, तो आधे जिनको पता है उनको बता दें, जिनको पता नहीं है! मुझे बीच में क्यों ले आते हो? मेरी बीच में क्या जरूरत है? जब इस मस्जिद में दोनों तरह के लोग मौजूद हैं तो आपस में तुम निपटारा कर लो, मैं जाता हूं।
उस गांव के लोग फिर चौथी बार उस फकीर के पास नहीं आए। चौथा उत्तर खोजने की उन्होंने बहुत कोशिश की, लेकिन चौथा उत्तर नहीं मिल सका। असल में तीन ही उत्तर हो सकते हैं--हां, न या दोनों। चौथा कोई उत्तर नहीं हो सकता। चौथा क्या उत्तर हो सकता है? तीन ही उत्तर हो सकते हैं।
वह फकीर बहुत दिन रुका रहा और प्रतीक्षा करता रहा कि शायद वे फिर आएं, लेकिन वे नहीं आए। बाद में किसी ने उस फकीर से पूछा कि क्यों रुके हो यहां? उसने कहा मैं रास्ता देखता हूं कि शायद वे चौथी बार आएं, लेकिन वे नहीं आए। उस आदमी ने कहाः चौथी बार हम कैसे आएं? चौथा उत्तर ही नहीं सूझता है। हम क्या उत्तर देंगे, जब तुम बोलोगे? उस फकीर ने कहाः अगर मैं बताऊंगा वह उत्तर तो वह भी बेकार हो जाएगा। क्योंकि तुम्हारे लिए फिर वह सीखा हुआ उत्तर हो जाएगा।
उस फकीर ने बाद में अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मैं राह देखता रहा कि शायद उस गांव के लोग आएं और मुझे ले जाएं। और मैं जब सवाल पूछूं, तब वे चुप रह जाएं और कोई भी उत्तर न दें। अगर वे कोई भी उत्तर न दें, तो फिर मुझे बोलना पड़ेगा, क्योंकि उनके उत्तर की चुप्पी बताएगी कि वे खोजने वाले लोग हैं। उन्होंने पहले से कुछ मान नहीं रखा है। वे यात्रा करने के लिए तैयार हैं, वे जा सकते हैं जानने के लिए, उन्होंने कुछ भी मान नहीं रखा है। जिसने मान रखा है, वह जानने की यात्रा पर कभी नहीं निकलता। जिसकी कोई बिलीफ है, जिसका कोई विश्वास है, वह कभी सत्य की खोज पर नहीं जाता।
इसलिए पहली बात आपसे यह कहना चाहता हूं सत्य की खोज पर वे जाते हैं, जो सिद्धांतों के कारागृह को तोड़ने में समर्थ हो जाते हैं।
हम सब सिद्धांतों में बंधे हुए लोग हैं, शब्दों में बंधे हुए लोग हैं,
हम सब शास्त्रों में बंधे हुए लोग--सत्य हमारे लिए नहीं हो सकता है। और ये शास्त्र बड़े सोने के हैं और इन शास्त्रों में बड़े हीरे-मोती भरे हैं। पिंजड़े सोने के भी हो सकते हैं और पिंजड़ों में हीरे-मोती भी लगे हो सकते हैं। लेकिन कोई पिंजड़ा इसीलिए कम पिंजड़ा नहीं हो जाता कि वह सोने का है, बल्कि और खतरनाक हो जाता है। क्योंकि लोहे के पिंजड़े को तो तोड़ने का मन होता है, सोने के पिंजड़े को बचाने की इच्छा होती है।
कारागृह में बंधा हुआ चित्त--हम अपने ही हाथ से अपने को बांधे हुए हैं!

यह पहली बात जान लेनी जरूरी है कि जब तक हम इससे मुक्त न हो जाएं, तब तक सत्य की तरफ हमारी आंख नहीं उठ सकती। तब हम वही नहीं देख सकते, जो है। तब तक हम वही देखने की कोशिश करते रहेंगे, जो हम चाहते हैं कि हो। और जब तक हम चाहते हैं कि कुछ हो, तब तक हम वही नहीं जान सकते हैं, जो है। जब तक हमारी यह इच्छा है कि सत्य ऐसा होना चाहिए, तब तक हम सत्य के ऊपर अपनी इच्छा को थोपते चले जाएंगे। जब तक हम कहेंगे कि भगवान ऐसा होना चाहिए--बांसुरी बजाता हुआ, कि धनुषबाण लिए हुए, तब तक हम अपनी ही कल्पना को भगवान पर थोपने की चेष्टा जारी रखेंगे।
और यह हो सकता है कि हमें धनुर्धारी भगवान के दर्शन हो जाएं और यह भी
हो सकता है कि बांसुरी बजाता हुआ कृष्ण दिखाई पड़े। और यह भी हो सकता है कि सूली पर लटके हुए जीसस की हमें तसवीर दिखाई पड़ जाए। लेकिन ये सब तस्वीरें हमारे ही मन की तस्वीरें होंगी। इनका सत्य से कोई भी दूर का भी संबंध नहीं। यह सब हमारी ही कल्पना का जाल होगा, यह हमारा ही प्रोजेक्शन होगा। यह हमारी ही इच्छा का खेल होगा। यह हमारा ही स्वप्न होगा और इस स्वप्न को जो सत्य समझ लेता है, फिर तो सत्य से मिलने के उसके मौके ही समाप्त हो जाते हैं।
नहीं, सत्य को तो केवल वे ही जान सकते हैं, जिनकी आत्मा पर कोई सिद्धांत का आग्रह नहीं। कोई आग्रह नहीं है जिनके मन पर कि यह होना चाहिए। जो कहते हैं, जो भी होगा, उसे जानने को तैयार हैं। और उसक ी जानने की तैयारी में हम अपनी सारी जंजीरें खोने को भी तैयार हैं।
और बड़े मजे की बात, सत्य कहता है कि सिर्फ जंजीरें खो दो और मैं तुम्हें मिल जाऊंगा। सत्य और कुछ नहीं मांगता, सत्य कुछ और नहीं मांगता, सिर्फ जंजीरें मांगता है! कि अपनी जंजीरें खो दो और मैं तुम्हें मिल जाऊंगा।
लेकिन हम जंजीरें खोने को तैयार ही नहीं हैं! जंजीरों से भी मोह हो जाता है! और पुरानी जंजीर हो तो बहुत मोह हो जाता है! बाप दादे दे गए हों जंजीरों को तो बहुत मोह हो जाता है! और जंजीरें बेटों को दे जाते हैं बाप, फिर बेटे अपने बेटों को सम्हाल देते हैं!
आदमी मर जाते हैं। जंजीरें पीढ़ी दर पीढ़ी चलती चली जाती हैं। हजारों- हजारों, लाखों-लाखों साल पुरानी जंजीरें हैं! हम भूल ही गए हैं कि हम उनसे बंधे हैं!
लेकिन यह ध्यान में रख लेना आज, पहले सूत्र के लिए जरूरी है, जब तक आपके मन में कोई एक सिद्धांत--चाहे आस्तिक का, चाहे नास्तिक का, चाहे कम्यूनिस्ट का, चाहे हिंदू का, चाहे मुसलमान का, चाहे ईसाई का--जब तक कोई भी सिद्धांत आपको पकड़े हुए है और आप कहते हैं कि मैं इस सिद्धांत को सही मानता हूं, तब तक आपको सत्य का दर्शन नहीं हो सकता। क्योंकि सत्य के दर्शन के पहले किसी सिद्धांत का सही होने का क्या अर्थ होता है?
जब तक सत्य मुझे नहीं मिला, तब तक मैं कैसे कहूं कि कौन सा शास्त्र सत्य है? अगर मेरी तस्वीर आपने देखी हो और मुझे भी देखा हो तो आप कह सकते हैं कि मेरी कौन सी तस्वीर सच है। लेकिन अगर आपने मुझे न देखा हो और आपके सामने हजार तस्वीरें रख दी जाएं तो क्या आप बता सकते हैं कि इसमें कौन सी तस्वीर सच है? मुझे देखा हो तो आप बता सकते हैं कि तसवीर कौन सी सच है। लेकिन मुझे न देखा हो तो आप कैसे बता सकते हैं कि कौन सी तस्वीर सच है? फिर आप जिस तसवीर को सच बताएंगे, आप झूठ की यात्रा पर चल रहे हैं।
कौन शास्त्र सत्य है? कैसे पता चलेगा आपको, जब तक आपको सत्य का पता नहीं? कौन सिद्धांत सत्य है? कैसे पता चलेगा? कौन तीर्थंकर? कौन अवतार? कौन ईश्वर का पुत्र सत्य है? कैसे पता चलेगा, जब तक आपको सत्य का पता न हो? सत्य का पता नहीं है और सिद्धांत के सत्य होने का पता चल गया? सत्य का पता नहीं है और शास्त्र के सत्य होने का पता चल गया? फिर हम झूठ से बंध गए। और जो झूठ से बंध गया--जो आदमी, इसको अब सत्य पता नहीं चल सकता।
पहला सूत्र अपने मन की जंजीरों को गौर से देखना--सिद्धांत की। और अगर हिम्मत जुटा सकें और यह मजे की बात है कि अगर जंजीर दिखाई पड़ जाए तो हिम्मत जुटाने में बहुत ताकत नहीं लगानी पड़ती। जंजीर दिखाई नहीं पड़ती, इसलिए हिम्मत जुटाना मुश्किल होता है। एक बार पता चल जाए कि यह रही मेरी गुलामी

तो अपनी गुलामी को कोई बरदाश्त करने को कभी राजी नहीं होता। फिर उसे तोड़ना आसान हो जाता है।
हम तोड़ने के सूत्रों पर बात करेंगे। लेकिन आज इतना ही आप सोचते हुए जाना कि आप भी गुलाम तो नहीं हैं? आपका मन भी कैद तो नहीं है? आपने भी दीवारें तो नहीं बना रखी हैं? और आपका मन भी कुछ सत्य मान कर तो नहीं बैठ गया है? अगर बैठ गया है तो सचेत हो जाना जरूरी है। अगर बैठ गया है तो खड़े हो जाना जरूरी है। अगर कहीं बंधन पकड़ लिए हैं तो उनको छोड़ देना जरूरी है।
और एक बार आदमी हिम्मत जुटा ले तो इतनी बड़ी शक्ति भीतर पैदा होती है।
एक बार साहस जुटा ले तो इतनी बड़ी आत्मा का जन्म होता है। और एक बार तय कर ले तो फिर कोई ताकत उसे गुलाम नहीं रख सकती। और जिस आदमी की आंखें आकाश की तरफ उठनी शुरू हो जाती हैं, खुले आकाश की तरफ, उस आदमी के निकट परमात्मा का आना शुरू हो जाता है।
परमात्मा है खुले आकाश की भांति। जो अपने पंखों को खोल कर उसमें उड़ते हैं, वे जरूर उसे उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन बंधे हुए पिंजड़े में बंद लोग उस तक नहीं पहुंच पाते।
क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगता कि हमारे पंख हैं या नहीं? क्या कभी आपके प्राणों में ऐसी प्यास नहीं जगती कि मैं मुक्त हो जाऊं? क्या कभी आपको गुलामी दिखाई नहीं पड़ती है? इन्हीं प्रश्नों के साथ आज की अपनी पहली बात पूरी करता हूं। यही पूछते अपने से जाना और सोते समय भी यही पूछना बार-बार कि मैं भी एक गुलाम तो नहीं हूं? और अगर मैं गुलाम हूं तो क्या मैं अपने ही हाथों से गुलाम होने को राजी हूं?
फिर कल सुबह दूसरे सूत्र पर मैं आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सत्य की खोज
दूसरा प्रवचन

भ्रम से सत्य की ओर
(26 फरवरी 1969 सुबह)

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक विस्तार मनुष्य के बाहर है। आंखें बाहर देखती हैं, हाथ बाहर स्पर्श करते हैं, कान बाहर सुनते हैं।
एक विस्तार बाहर है, एक विस्तार भीतर भी है, लेकिन न वहां आंख देखती है, न वहां हाथ स्पर्श करते हैं, न वहां कान सुनते हैं। शायद इसीलिए जो भीतर है, वह अनजाना और अपरिचित रह जाता है। या इसलिए भी कि वह इतने निकट है कि हमें दिखाई नहीं पड़ता। जो दूर है, वह दिखाई पड़ जाता है। जो निकट है, वह छिप जाता है!
देखने के लिए भी दूरी चाहिए, फासला चाहिए। आप मुझे दिखाई पड़ रहे हैं, क्योंकि मुझसे दूर हैं। मैं स्वयं को ही दिखाई नहीं पडूंगा, क्योंकि वहां दूरी जरा भी नहीं है। आंख सब कुछ देखती है, सिर्फ स्वयं को छोड़ कर। आंख अपने को ही नहीं देख पाती, जो सबको देखती है वह भी अपने को नहीं देख पाती है।
हम जो सबको जानते हैं, अपने को ही नहीं जान पाते! और सत्य की खोज में जो अपने को ही नहीं जानता हो, वह और क्या जान सकता है?
सत्य का पहला अनुभव स्वयं के भीतर है।
क्योंकि वही है निकटतम। वही है, जहां हमारा प्रवेश है। और सबको हम बाहर से ही जान सकते हैं, भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। सिर्फ एक बिंदु है अस्तित्व का, जहां हम भीतर भी प्रविष्ट हो सकते हैं। वह स्वयं का बिंदु है। और इसलिए सत्य के मंदिर का पहला द्वार है वहीं है, स्वयं के भीतर। लेकिन अदभुत है यह पहेली कि जीवन भर बीत जाता है और हमें अपनी न कोई गंध मिलती है, न अपनी कोई खबर मिलती। अपने से अपरिचित यह पूरा जीवन बीत जाता है!
एक विचारक था, शॉपनहार। वह एक रात एक बगीचे में घूमने गया। अभी कोई तीन ही बजे होंगे, अभी सुबह होने में बहुत देर थी। वह रात भर सो नहीं सका था, किसी प्रश्न में उलझा था और जल्दी ही बगीचा पहुंच गया था। माली ने देखा कि आधी रात गए कौन बगीचे में आ गया! माली अपनी लालटेन और अपना भाला उठा कर देखने गया। दूर से ही देखने की कोशिश की कि कौन है? और तब उसे यह भी शक हुआ कि जो आदमी घुस आया है, वह पागल भी मालूम पड़ता है। क्योंकि शॉपनहार एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर अपने से ही बातें कर रहा था! दूसरा कोई भी न था! वह जोर-जोर से बात कर रहा था! तो माली ने समझा पागल है। उसने जोर से अपने भाले को पटक कर आवाज की और कहा कि कौन हैं आप? और कैसे आ गए हैं यहां? और कहां से आ गए?
शॉपनहार बहुत हंसने लगा और उसने कहा, बड़ी मुसीबत हो गई, यही तो मैं अपने से पूछ रहा हूं जिंदगी भर से-कि मैं कौन हूं? और कहां से आ गया हूं? और कैसे आ गया हूं? और यही तुम भी पूछते हो! काश, मेरे पास इसका उत्तर होता! निश्चित ही माली ने समझा होगा कि आदमी पागल है, जिसे यह भी पता नहीं कि
वह कौन है? कहां से आ गया है? और क्यों? लेकिन हमें पता है?
शॉपनहार पर हम भी हंस सकते हैं। लेकिन शॉपनहार की जो स्थिति है, वही स्थिति हमारी भी है। हमें भी कुछ पता नहीं--कि कौन हैं हम? कहां से आ गए हैं? और क्यों आ गए हैं? और यह यात्रा कहां के लिए चल रही है?
जीवन का कोई भी जरूरी तत्व हमसे परिचित नहीं है, अपरिचित है! और सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि हम अपने से ही अपरिचित है कि--मैं कौन हूं! और जो यह भी नहीं जानता कि मैं कौन हूं, वह सत्य के और पहलुओं को कैसे जान सकता है?
स्वयं को जानना, सत्य के जानने की दिशा में अनिवार्य चरण है। उसके बिना कोई सत्य की तरफ नहीं जा सकता।

हममें से न मालूम कितने लोग पूछते हैं--ईश्वर है? न मालूम कितने लोग पूछते हैं--मोक्ष है? न मालूम कितने लोग और कितने प्रश्न पूछते हैं। शायद एक प्रश्न कोई भी नहीं पूछता कि--मैं कौन हूं! हूं, तो कौन हूं?
धर्म का सबसे बुनियादी प्रश्न ईश्वर नहीं। धर्म का सबसे ज्यादा बुनियादी प्रश्न स्वयं का होना है।
सत्य की यात्रा बाहर की तरफ नहीं है। सत्य की यात्रा भीतर की तरफ है। बाहर जो यात्रा चल रही है, खोज चल रही है, उससे सत्य कभी भी उपलब्ध नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा काम-चलाऊ बातें ज्ञात हो जाती हैं। सत्य की उपलब्धि तो भीतर की तरफ चलने से ही हो सकती है।
मैंने सुना है, एक, एक राजधानी में एक भिखारी की मृत्यु हो गई। तो रोज
ही कोई मरता है। उस गांव में भी वह भिखारी मर गया तो कोई आश्चर्य की बात तो न थी। लेकिन बड़ा आश्चर्य हो गया और सारा गांव उस भिखारी की, जहां लाश पड़ी थी, वहां इकट्ठा हो गया। तीस-पैंतीस वर्षों तक वह भिखारी उस चौरस्ते पर बैठ कर भीख मांगता रहा, फिर उसकी मौत हुई। तो लोगों ने उसके चीथड़ों में आग लगा दी, उसके फूटे-टूटे बर्तन फेंक दिए और वह उसकी लाश को उठा कर ले जा रहे थे, तभी किन्हीं लोगों ने कहा, इस भिखारी ने इस जमीन पर बैठ कर तीस वर्षों में जमीन भी गंदी कर दी है। थोड़ी जमीन की मिट्टी भी खोद कर साफ कर दी जाए। जैसे ही उन्होंने जमीन खोदी, वे सब हैरान रह गए, सारा नगर वहीं इकट्ठा
हो गया। खुद सम्राट भी वहां आया। जैसे उन्होंने जमीन खोदी वे हैरान रह गए, वह भिखारी जिस जगह पर बैठ कर भीख मांगता रहा, उस जगह बहुत धन गड़ा हुआ था, बहुत खजाने भरे हुए थे! लेकिन उस भिखारी ने सब तरफ हाथ फैलाए, कभी वह जगह खोद कर न देखी, जहां वह बैठा था। तब वह सारे गांव के लोग हंसने लगे कि भिखारी बिल्कुल पागल था।
लेकिन गांव में से किसी आदमी को यह ख्याल न आया कि कहीं ऐसा ही मेरे साथ भी तो नहीं हो रहा, कि मैं जहां खड़ा हूं, वहीं खजाने गड़े हों और मैं जिंदगी भर बाहर हाथ फैला कर भीख मांगता रहूं!
हम जहां खड़े हैं, जहां हमारा अस्तित्व है, जो हमारा होना है, वहीं खजाने गड़े हैं सत्य के।
और हम शास्त्रों में खोजेंगे, गुरुओं के चरणों को पकड़ेंगे, शब्दों में खोजेंगे, सिद्धांतों में खोजेंगे और वहां कभी नहीं, कभी नहीं--जहां हम हैं! कोई गीता में खोजेगा सत्य को! कोई कुरान में, कोई बाइबिल में, कोई महावीर के पास, कोई बुद्ध के पास, लेकिन कभी कोई वहां फिकर नहीं करेगा, जहां वह है, जहां वह खुद है।
और सत्य जब भी मिलता है, तो वहीं मिलता है, जहां हम हैं। चाहे बुद्ध को मिले-तो किसी और के पास नहीं मिलता, अपने भीतर मिलता है। और चाहे महावीर को मिले-तो किसी के पास नहीं मिलता अपने भीतर मिलता है। और चाहे क्राइस्ट को मिले--तो किसी के पास नहीं मिलता, अपने भीतर मिलता है।
सत्य जब भी मिला है, तो अपने भीतर मिला है और जिन्हें भी कभी मिलेगा, अपने भीतर ही मिलेगा।
और हम सब बाहर ही खोजते-खोजते समाप्त हो जाते हैं, इसलिए उसे हम उपलब्ध नहीं कर पाते! इसलिए दूसरे सूत्र की पहली बात समझ लेनी जरूरी है। सत्य है तो स्वयं के भीतर है।
इसलिए किसी और से मांगने से नहीं मिल जाएगा। सत्य की कोई भीख नहीं मिल सकती। सत्य उधार भी नहीं मिल सकता। सत्य कहीं से सीखा भी नहीं जा सकता, क्योंकि जो भी हम सीखते हैं, वह बाहर से सीखते हैं। जो भी हम मांगते हैं, वह बाहर से मांगते हैं। सत्य पढ़ कर भी नहीं जाना जा सकता, क्योंकि जो भी हम पढ़ेंगे, वह बाहर से पढ़ेंगे।
सत्य है हमारे भीतर--न उसे पढ़ना है, न मांगना है, न किसी से सीखना है-- उसे खोदना है। उस जमीन को खोदना है, जहां हम खड़े हैं। तो वे खजाने उपलब्ध हो जाएंगे, जो सत्य के खजाने हैं।
एक और छोटी सी कहानी मुझे याद आती है। सुना है मैंने, कि जब भगवान ने दुनिया बनाई और आदमी को बनाया तो आदमी को बनाते ही वह बहुत परेशान हो गया! और उसने सारे देवताओं को बुलाया कि आदमी को बना कर मैं बहुत मुसीबत में पड़ गया हूं और ऐसा मुझे लगता है कि यह आदमी चौबीस घंटे मेरे दरवाजे पर खड़े

होकर शिकायतें करता रहेगा। अब मैं न सो सकूंगा, न शांति से बैठ सकूंगा। इस आदमी से मुझे बच जाना बहुत जरूरी है। मैं कहां छिप जाऊं कि आदमी मुझे खोज न पाए?
और उसके देवताओं ने बहुत से रास्ते सुझाए। किसी देवता ने कहा, कि आप हिमालय पर गौरीशंकर पर बैठ जाएं। ईश्वर ने कहा, कि तुम्हें पता नहीं है, बहुत जल्द तेनजिंग और हिलेरी नाम के लोग वहां पहुंच जाएंगे और मेरी मुसीबत शुरू हो जाएगी। किसी ने कहा, कि पेसिफिक महासागर में पांच मील नीचे गहराई में छिप जाइए। ईश्वर ने कहा, तुम्हें पता नहीं है, जल्दी ही वहां वैज्ञानिक पहुंच जाएंगे। किसी ने कहाः चांद-तारों पर बैठ जाएं। ईश्वर ने कहाः तुम्हें पता नहीं, क्षण भी नहीं बीत पाएंगे और वैज्ञानिक वहां चरण रख देंगे। मुझे कोई ऐसी जगह बताओ, जहां आदमी न पहुंच सके।
फिर एक बूढ़े देवता ने ईश्वर के कान में कहा कि आप आदमी के भीतर ही छिप जाएं, आदमी वहां कभी नहीं जाएगा! और ईश्वर ने वह बात मान ली और वह आदमी के भीतर बैठ गया। और सच में ही आदमी, कभी वहां नहीं जाता!
एक जगह छोड़ कर आदमी सब जगह जाता है! एक जगह चूक जाती है, वहां वह नहीं जाता! वह खुद के भीतर होने की जो डायमेंशन है, वह जो खुद के भीतर होने की दिशा है, वहां हमारे कोई पैर कभी नहीं पड़ते!
शायद हमें उसका पता ही नहीं है कि भीतर भी एक मार्ग है। शायद हमें पता
ही नहीं है कि भीतर भी एक द्वार है। शायद हमें पता ही नहीं है कि भीतर भी कुछ है। हमें उसका कोई स्मरण नहीं है और इसलिए एक जगह से हम चूक जाते हैं! और उस जगह से जो चूक जाता है, वह सत्य से भी चूक जाता है।
कोई अगर पूछे कि सत्य का मंदिर कहां है? कोई अगर पूछे कि सत्य का आवास कहां है? कोई अगर पूछे कि कहां है सत्य? तो एक ही उत्तर है कि वह जो भीतर है, वह जो इनरनेस है, वह जो भीतर होना है; वही मंदिर है, वही आवास है, वही जगह है, जहां सत्य बैठा है।
एक बीज हम जमीन में बो देते हैं। एक अंकुर निकलता है, पत्ते निकलते हैं, पौधा बड़ा हो जाता है। कभी आपने सोचा कि यह पौधा यह इतना बड़ा वृक्ष जिसके नीचे हजारों लोग विश्राम करें, यह इतना बड़ा वृक्ष कहां से आया? इस वृक्ष की आत्मा कहां है? उस छोटे से बीज में! उस बीज को तोड़ें-फोड़ें तो उसमें वृक्ष कहीं भी नहीं मिलेगा! लेकिन वहीं कहीं छिपा है। यह जो इतना बड़ा वृक्ष प्रकट हो गया है, उस छोटे से बीज के प्राणों में छिपा है!
यह जो इतना बड़ा विस्तार है सारे जगत का, यह भी, वह जो भीतर होने का बीज है, वहां कहीं छिपा है! वहीं से सब फैलता है--बड़ा होकर। हम भी अपने भीतर किसी कोने में, किसी बीज में छिपे हैं। वहीं से प्रकट होते हैं, फैलते हैं। फिर सिकुड़ते हैं और फिर विलीन हो जाते हैं।
जीवन की सारी गति भीतर से बाहर की ओर है। सारी चीजें भीतर से बाहर की
ओर फैलती हैं और विकसित होती हैं। उलटा नहीं होता है, बाहर से भीतर की तरफ कुछ भी नहीं जाता। सब-कुछ भीतर से बाहर की तरफ आता है। यह जो भीतर होना है, यह जो बीइंग, आत्मा है--यह जो भीतर होना है, इस पर ध्यान तभी जा सकता है, जब हम बाहर से मुक्त हो जाएं। जब हमारी नजर बाहर से मुक्त हो जाए, तो भीतर की तरफ जा सकती है। बाहर की तरफ भटकती हुई दृष्टि, भीतर की तरफ नहीं जा सकती। स्वाभाविक है जब तक हम बाहर देखते रहते हैं, तब तक हम भीतर कैसे देख सकते हैं?
और हम सब बाहर देख रहे हैं। बाहर भी हम इसलिए देख रहे हैं कि हमें यह ख्याल है कि जो भी मिलना है, वह बाहर मिलेगा। जो भी पाना है, वह बाहर पाया जा सकता है। जो उपलब्धि होगी, वह बाहर है। इसलिए हम बाहर देख रहे हैं। भीतर हम तभी देख सकते हैं, जब हमें यह स्पष्ट हो जाए कि बाहर किसी को कभी कुछ नहीं मिला। बाहर देखने वालों ने व्यर्थ देखा। बाहर दौड़ने वाले व्यर्थ दौड़े हैं। वे कभी कहीं पहुंचे नहीं।
शायद आपने सुना हो कि सिकंदर जिस दिन मरा और जिस राजधानी में उसकी अरथी निकली तो लोग देख कर हैरान रह गए। उसकी अरथी के, दोनों हाथ बाहर लटके हुए थे! लोग पूछने लगे कि सिकंदर की अरथी के बाहर हाथ क्यों लटके हुए हैं? क्योंकि कभी किसी अरथी के बाहर हाथ लटके हुए देखे नहीं गए! इस सिकंदर की अरथी के साथ भूल हो गई कोई?

लेकिन यह कोई भिखमंगे की अरथी न थी कि भूल हो जाती, यह सिकंदर की अरथी थी। हजारों सम्राट आए थे, बड़े सेनापति आए थे। बड़े-बड़े सम्राट अरथी में कंधा लगाए हुए थे। किसी को तो दिखाई पड़ जाता कि हाथ बाहर क्यों लटके हुए हैं? फिर हर आदमी यही पूछने लगा!
सांझ होते-होते लोगों को पता चला कि सिकंदर ने मरने के पहले अपने मित्रों को कहा था कि मेरी अरथी जब निकले तो मेरे हाथ बाहर लटके रहने देना। तो मित्रों ने पूछा, कैसे पागलपन की बात करते हो? हाथ कभी अरथी के बाहर लटके देखे हैं? सिकंदर ने कहाः लेकिन मैं यही चाहता हूं कि मेरे हाथ बाहर लटके रहें।
मित्र पूछने लगे, चाहते क्यों हो ऐसा?
सिकंदर ने कहाः मैं इसलिए चाहता हूं, ताकि सारे लोग देख लें कि सिकंदर
के हाथ भी खाली हैं।
जिंदगी भर दौड़ कर, बाहर सब खोज कर भी हाथ भर नहीं पाए, हाथ खाली रह गए! सिकंदर के हाथ भी खाली रह जाते हैं! हम सबके हाथ भी खाली रह जाएंगे। बाहर तो कोई भी कुछ नहीं पा सका है। आशा बढ़ती है कि बाहर कुछ मिल जाएगा, जीवन चूक जाता है और आशा निराशा हो जाती है।
एक भी आदमी ने नहीं कहा आज तक पृथ्वी पर कि मैंने खोजा और मुझे बाहर मिल गया हो। और जिन्होंने भीतर खोजा, उनमें से एक ने भी यह नहीं कहा कि मैंने भीतर खोजा और मुझे न मिला हो!
इसलिए धर्म को मैं परम विज्ञान कहता हूं, सुप्रीम साइंस कहता हूं। क्योंकि विज्ञान का अर्थ होता है, जहां अपवाद न होते हों, एक्सेप्शन न होते हों। और विज्ञान में, जिसको हम साइंस कहते हैं, अपवाद मिल सकते हैं। धर्म के जगत में आज तक कोई एक भी अपवाद नहीं है। जिन्होंने बाहर खोजा, उन्होंने निरपवाद रूप से कभी कुछ नहीं पाया! जिन्होंने भीतर खोजा, उन्होंने निरपवाद रूप से सदा पाया!
इसलिए दूसरे सूत्र पर जोर देना चाहता हूं कि बाहर नहीं है सत्य की संपदा। जीवन का सत्य भीतर है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मन में साफ हो जाए तो हमारी भीतर की तरफ यात्रा शुरू हो सकती है। लेकिन हमारे मन में कहीं यह ख्याल है कि नहीं, बाहर है! बाहर सब-कुछ मालूम पड़ता है, सब बाहर दिखाई पड़ता है। इतना बड़ा विस्तार दिखाई पड़ता है जगत का बाहर कि लगता है, भीतर क्या होगा! बाहर सब मालूम पड़ता है--भीतर क्या होगा?
इतना छोटा मालूम पड़ता है भीतर का होना--मेरे भीतर, आपके भीतर, क्या हो सकता है? जो भी है वह इस अनंत विस्तार में है, बाहर। सब बाहर दिखाई पड़ता है, अंतहीन फैला हुआ। भीतर तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। इस बड़े विस्तार के कारण ही यह भ्रम पैदा होता है कि भीतर क्या हो सकता है, छोटी सी जगह में!
लेकिन सवाल छोटे का नहीं। और चूंकि हम भीतर नहीं गए, इसलिए हमें मालूम पड़ता है कि भीतर छोटा है। जिस दिन जाएंगे, उस दिन पता चलेगा कि बाहर, अनंत बाहर समा जाएं उस छोटे में, इतना बड़ा है! जाएंगे, तभी स्मरण हो सकता है, तभी बोध हो सकता है। अनुभव करेंगे, तभी ख्याल हो सकता है। बाहर की तो सीमा भी है, भीतर की कोई सीमा नहीं! लेकिन बिना अनुभव के कोई रास्ता नहीं।
और कुछ चीजें हैं, जो केवल अनुभव से ही जानी जा सकती हैं। अगर मेरे हाथ में दर्द हो रहा हो तो मैं किसी दूसरे को नहीं समझा सकता हूं कि वह दर्द कैसा हो रहा है। मैं लाख उपाय करूं तो भी नहीं समझा सकता हूं। और मैं इस दर्द को निकाल कर भी नहीं बता सकता हूं कि वह दर्द यह रहा। और अगर मैं अपने हाथ को भी काटूं, पीटूं तो भी वह दर्द कहीं से निकाल कर मैं खुद भी नहीं देख सकता हूं कि यह है वह दर्द।
हम सबके भीतर विचार चलते हैं और अगर सिर को काट-पीट कर देखा जाए तो नसें मिलेंगी, नाड़ियां मिलेंगी, विचार कहीं भी नहीं मिलेंगे। आज तक एक भी विचार को बाहर निकाल कर नहीं देखा जा सका है। और अगर हम देखने की ही जिद्द करें तो मानना पड़ेगा कि विचार होते ही नहीं। लेकिन हम सब जानते हैं कि विचार होते हैं।
हम सब जानते हैं कि भीतर प्रेम भी होता है। लेकिन वैज्ञानिक कहेगा कि हृदय को हम बहुत काटते-छांटते हैं, देखते हैं, वहां तो कोई प्रेम जैसी चीज मिलती नहीं। और न ही मैं अपने भीतर के प्रेम को निकाल कर किसी को दिखा सकता

हूं कि यह रहा। किसी दूसरे की फिकर छोड़ दूं, मैं भी नहीं देख सकता कि यह रहा! फिर भी हम जानते हैं कि भीतर प्रेम भी है, भीतर विचार भी है, भीतर अनुभव भी है, दर्द भी है, पीड़ा भी है। लेकिन वे सब अनुभव की बातें हैं।
और भीतर जो छोटा सा प्रेम है, जब किसी के जीवन में प्रकट होता है, तब छोटा सा नहीं रह जाता। जब भीतर प्रेम प्रकट होता है तो यह सारा जगत छोटा हो जाता है और प्रेम बड़ा हो जाता है। और जब भीतर पीड़ा होती है तो पीड़ा छोटी नहीं रह जाती। यह सारा जगत छोटा हो जाता है और पीड़ा बड़ी हो जाती है। और भीतर जब आनंद का जन्म होता है तो आनंद छोटा नहीं होता, यह सारे जगत का सारा आनंद छोटा पड़ जाता है और वह आनंद बड़ा हो जाता है। छोटा और बड़ा होना तभी पता चल सकता है, जब भीतर जो है, उसका हमें अनुभव हो।
और भीतर के जिस सत्य की हम बात कर रहे हैं, जिस दिन उसका अनुभव होता है,
उस दिन तो वह सत्य इतना बड़ा है, इतना विराट कि हम जिस जगत को जानते हैं, इस तरह के अनंत जगत भी उसकी विराटता को नहीं छूते! लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं। उस दिशा में हमने कोई कदम ही नहीं उठाया।
हम उस अंधे की भांति हैं, जिसे प्रकाश का कोई पता न हो और उस अंधे को हम लाख समझाने की कोशिश करें तो भी उसे पता नहीं चल सकता है कि प्रकाश क्या है। प्रकाश पर लिखे बड़े-बड़े ग्रंथ उसके सामने रख दें तो भी कुछ पता नहीं चलता है। शायद हमारे ग्रंथों से नासमझी पैदा हो जाए, समझ पैदा नहीं हो सकती।
रामकृष्ण कहते थे कि एक आदमी, एक अंधा आदमी, अपने मित्रों के घर मेहमान था। मित्रों ने बहुत-बहुत उसका स्वागत किया था, बहुत सत्कार किया था, बहुत स्वादिष्ट मिष्ठान्न बनाए थे। फिर वह अंधा मित्र पूछने लगा कि यह जो, जो मैं खा रहा हूं, बहुत स्वादिष्ट है, यह काहे से बना है, यह क्या है? मित्रों ने कहा कि यह दूध से बनी हुई चीज है। वह अंधा आदमी कहने लगा, दूध के संबंध में मुझे कुछ समझाओ, कैसा होता है दूध? वे मित्र कहने लगे, दूध! बगुला देखा है? वह बगुले की तरह सफेद, बगुले के पंखों की तरह सफेद होता है, बिल्कुल शुभ्र।
वह अंधा आदमी कहने लगा पहेलियां मत बुझाओ, मुझे यही पता नहीं कि दूध क्या होता है? अब तुम कहते हो कि बगुले के पंखों की तरह सफेद! मुझे यह भी पता नहीं कि बगुले के पंख क्या होते हैं। मुझे यह भी पता नहीं कि यह सफेद क्या है। तुमने और मुश्किलें खड़ी कर दीं। मेरी पहली मुश्किल अपनी जगह है कि दूध क्या है? और दूसरी मुश्किल खड़ी हो गई कि बगुला क्या है? और तीसरी मुश्किल खड़ी हो गई कि यह सफेद क्या है? अब तो तुम मुझे समझाओ कि यह बगुला क्या है?
उसके मित्रों ने कहा कि यह तो बहुत मुश्किल हो गई। यह आदमी अंधा है, इसे रंग कैसे समझाया जा सकता है? उस मित्र ने कहा कि कोई तरकीब निकालो, जिससे कि मैं समझ सकूं बगुला क्या होता है।
एक मित्र बहुत समझदार होगा। वह पास आया और अपना हाथ उस अंधे के पास ले गया और उसने कहा मेरे हाथ पर फेरें। जिस तरह मेरा हाथ सुडौल झुका हुआ है, इसी तरह बगुले की गरदन होती है।
उस अंधे आदमी ने हाथ पर हाथ फेरा, फिर वह खुशी से नाचने लगा और कहने लगा मैं समझ गया कि दूध कैसा होता है। मैं समझ गया, मैं बिल्कुल समझ गया कि मुड़े हुए हाथ की तरह दूध होता है!
उस अंधे के मित्रों ने अपने हाथ सिर से ठोंक लिए और उन्होंने कहाः यह
तो बड़ी मुसीबत हो गई। समझाने हम चले और नासमझी पैदा हो गई।
अंधे को बताना बहुत मुश्किल है कि रंग कैसा होता है। जिसे वह भीतर से नहीं जानता, उसे बाहर से बताने का कोई उपाय नहीं है। अंधा अगर भीतर से जानता हो कि रंग कैसा होता है तो बाहर से बताया जा सकता है। फिर बताने की कोई जरूरत नहीं।
यही उलझन है--जीवन की सबसे बड़ी उलझन यही है। कि जो जानते हैं, उन्हें बताने की कोई जरूरत नहीं है। और जो नहीं जानते, उन्हें बताने का कोई उपाय नहीं है। जो नहीं जानते हैं, उन्हें बताने से और उलझन पैदा हो जाती है। और जो जानते हैं, उन्हें तो बताने का कोई सवाल नहीं है, कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन जाना भीतर से जा सकता है। और बताया हमेशा बाहर से जा सकता है। इसलिए सत्य को कभी बताया नहीं जा सकता, जाना जा सकता है। जानने का अर्थ यह हुआ कि भीतर से हमारी कोई पकड़ और पहचान होनी चाहिए। और बताने का यह अर्थ हुआ कि जिनकी पकड़ और पहचान हो, वह हमें बता दें।
एक गांव में बुद्ध मेहमान थे। कुछ लोग अंधे आदमी को पकड़ लाए और कहने लगे कि हम इस मित्र को समझाते हैं कि प्रकाश है। यह आदमी इनकार करता है। यह कहता है, प्रकाश नहीं है। हम जानते हैं कि प्रकाश है, और सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि प्रकाश है। यह आदमी हमसे कहता है कि मैं छूकर देखना चाहता हूं तुम्हारे प्रकाश को। कहां है, लाओ, मैं जरा छूकर देख लूं।
अब प्रकाश को छूकर नहीं देखा जा सकता। लेकिन अंधा आदमी तो चीजों को छूकर ही जानता है। उसके जीवन की पहचान का रास्ता स्पर्श है। होने का, अस्तित्व का सबूत स्पर्श है उसके लिए। वह कहता है कि मैं प्रकाश को छूकर देखना चाहता हूं। और गलत तो नहीं कहता, वह चीजों को छूकर ही जानता है। जिनको छू लेता है, मानता है कि वे हैं। जिनको नहीं छू पाता है, मानता है कि वे नहीं है। छूना ही होने का प्रमाण है। और फिर वह अंधा आदमी हंसता है और कहता है, नहीं ला पाते अपने प्रकाश को, क्यों व्यर्थ की बातें करते हो? क्यों स्वप्न देखते हो? प्रकाश नहीं होगा।
उन मित्रों ने बुद्ध से कहा कि आप आए हैं गांव में तो हमने सोचा कि शायद आप समझा सकेंगे, इसलिए हम इस मित्र को ले आए हैं। यह कहता है कि मैं छूकर देख सकता हूं, स्वाद लेकर देख सकता हूं। बजाओ तुम्हारे प्रकाश को, मैं ध्वनि सुन लूं। सुगंध हो तुम्हारे प्रकाश में तो उसकी वास ले लूं। लेकिन जब हम कहते हैं कि प्रकाश को न छुआ जा सकता है, न सुगंध ली जा सकती है, न वास; न उसकी ध्वनि है; उसे तो देखा जा सकता है। तब यह अंधा आदमी कहता है कि यह देखना क्या है? क्योंकि अंधे आदमी को अगर देखने का ही पता हो तो वह अंधा नहीं है। और तब यह हंसता है और कहता है कि नाहक मुझे अंधा सिद्ध करने को क्यों प्रकाश की बातें करते हो? तुम्हें भी नहीं दिखाई पड़ता, किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता, जो नहीं है, वह कैसे दिखाई पड़ सकता है?
बुद्ध ने कहा मैं इसे नहीं समझाऊंगा, क्योंकि इस दिशा में समझाना नासमझी होगी। मैं तुमसे कहूंगा कि इसे किसी विचारक के पास ले जाने की जरूरत नहीं है। इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ। इसे उपदेश की आवश्यकता नहीं है, इसके उपचार की जरूरत है। इसकी आंख का इलाज करवाओ, ताकि यह देख सके। जिस दिन यह देख सकेगा भीतर से, उस दिन ही जान सकेगा, उसके पहले नहीं। लाख बुद्ध समझाएं तो भी कोई फर्क नहीं पड़ सकता।
उस अंधे आदमी को वैद्य के पास ले जाया गया। उसकी आंख पर कोई जाली थी,
जो छह महीने के प्रयोग से कट गई।
वह आदमी नाचता हुआ बुद्ध के पास आया, उनके चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा प्रकाश है। लेकिन बुद्ध ने कहाः छूकर दिखाओ कहां है? मैं छूकर देखना चाहता हूं। वह अंधा आदमी हंसने लगा और कहने लगा कि नहीं वह छूकर नहीं जाना जा सकता। तो बुद्ध ने कहाः मैं उसका स्वाद लेना चाहता हूं। वह अंधा आदमी कहने लगा कि आप मजाक न करें, उसका स्वाद भी नहीं लिया जा सकता। तो बुद्ध ने कहाः बजाओ, ताकि मैं उसकी ध्वनि सुन लूं। वह अंधा आदमी कहने लगा कि आप पुरानी बातें छोड़ दें। अब मुझे भी दिखाई पड़ता है। प्रकाश को देखा जा सकता है, मैं देख रहा हूं, वह है।
लेकिन बुद्ध ने कहाः पहले वे तुझे समझाते थे, तू हमें समझा रहा है!
उस आदमी ने कहाः मेरी भी कोई गलती न थी। गलती थी तो उनकी ही थी, जो समझाते थे। क्योंकि अंधे आदमी को कैसे समझाया जा सकता है? और अगर मैं उनकी बात मान लेता तो गलती में पड़ जाता। मैंने उनकी बात नहीं मानी, नहीं मानी, नहीं मानी तो उन्हें मेरा इलाज करवाना पड़ा। अगर मैं उनकी बात मान लेता तो शायद इलाज की भी कोई जरूरत न थी। मैं मान लेता और बात खत्म हो जाती, मैं अंधा ही रह जाता और मैं कभी भी नहीं जान पाता।
जाना जा सकता है सत्य को, माना नहीं जा सकता।
सीखा नहीं जा सकता, सिखाया नहीं जा सकता। सत्य की कोई लर्निंग नहीं होती। इसीलिए सत्य का कोई स्कूल नहीं हो सकता, जहां कि सिखा दिया जाए और

लोग सीख लें। लेकिन चिकित्सा हो सकती है। आंख का उपचार हो सकता है। वह आंख का उपचार कैसे हो सकता है, वह कल सुबह हम तीसरे सूत्र में बात करेंगे।
अभी दूसरे सूत्र में तो यह समझ लेना जरूरी है कि जाना जा सकता है, लेकिन जानना हमेशा भीतर से आता है। और जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमेशा बाहर से आता है। नोइंग भीतर से आती है और नालेज बाहर से आती है। प्रकाश के संबंध में ज्ञान तो प्रकाश के संबंध में लिखी हुई किताबों में मिल जाएगा। लेकिन प्रकाश का जानना किसी किताब में नहीं मिल सकता, वह भीतर से आता है। जानने और ज्ञान में अंतर है। यह समझ लेना नोइंग और नालेज में अंतर है--यह समझ लेना, जानना भीतर से आता है और ज्ञान बाहर से आता है। ज्ञान आदमी को पंडित बना सकता है, ज्ञानी नहीं।
ज्ञानी आदमी बनता है जानने से, खुद के जानने से।
एक आदमी किताबें पढ़ ले तैरने के संबंध में, हजारों किताबें पढ़ ले, तैरने के संबंध का पंडित हो जाए। तैरने के संबंध में जो भी लिखा है, सब जान ले; तैरने के संबंध में जो भी कभी कहा गया है, सब जान ले। तैरने के संबंध में खुद भी किताब लिख सके, व्याख्यान दे सके, तैरने के संबंध में पी एच डी कर ले। लेकिन उस आदमी को भूल से भी पानी में धक्का मत दे देना। क्योंकि वह आदमी और सब कर सकता है, तैर नहीं सकता। तैरने के संबंध में जानना, तैरना जानना नहीं है। तैरना जानना बिल्कुल और बात है। तैरने के संबंध में जानना बिल्कुल और बात है।
और ध्यान रहे, यह भी हो सकता है कि जो तैरना जानता हो, वह तैरने के संबंध में कुछ भी न बता सके। वह कहे कि बस तैरा जा सकता है। हम कूद जाते हैं और तैरते हैं, तुम भी कूद जाओ और तैरो। लेकिन उससे कहो कि एक व्याख्यान दो तैरने के संबंध में। वह कहेगा, व्याख्यान कैसे दें? पानी हो तो हम कूद कर बता दें। और तैर जाए। लेकिन व्याख्यान क्या हो सकता है तैरने के संबंध में? तैरने के संबंध में जानना, नोइंग अबाउट एक बात है।
सत्य के संबंध में तो जाना जा सकता है, लेकिन वह सत्य का जानना नहीं। सत्य के संबंध में जो जानते हैं, उन पंडितों की लंबी कतारें सारी दुनिया में हैं। लेकिन जो सत्य को जानते हैं, वे बहुत थोड़े लोग हैं कभी मुश्किल से।
और जो सत्य को जानते हैं, अक्सर सत्य के संबंध में जानने वाले उनके दुश्मन हो जाएंगे। अक्सर यह होगा कि सत्य को जानने वाला आदमी और सत्य के संबंध में जानने वाले आदमियों के बीच दुश्मनी खड़ी हो जाएगी। क्योंकि वह जो सत्य को जानता है वह कहेगा कि सत्य के संबंध में, जो भी बातें जानी जाती हैं, सब फिजूल हैं, दो कौड़ी की। क्योंकि जो तैरना जानता है, वह कहेगा कि तैरने के संबंध में जानने का क्या अर्थ? जिस संबंध में जानने से तैरना न आ जाता हो--क्या प्रयोजन उस ज्ञान का, जो तैरना न सिखा देता हो?
आपने सुनी होगी वह बात। एक मुल्ला नसरुद्दीन एक फकीर था। वह एक छोटे
से गांव में नाव चलाने का काम करता था। दो पैसे नाव पर लेता था लोगों से। एक दिन गांव का बड़ा पंडित नाव पर सवार होकर पार जा रहा था। बीच नाव में उसने मुल्ला से पूछा, कि मुल्ला गणित जानते हो? उस मुल्ला ने कहा, गणित! गणित कैसा होता है? उस पंडित ने कहा, अरे मूर्ख, पूछता है, गणित कैसा होता है? गणित भी नहीं जानता! तेरी जिंदगी बेकार गई, तेरी चार आना जिंदगी बिल्कुल बेकार चली गई। क्योंकि जो आदमी गणित नहीं जानता वह और क्या जान सकता है?
मुल्ला ने कहा, आप कहते हैं तो ठीक है, चली गई हो।
थोड़ी दूर आगे फिर उस पंडित ने कहा, ज्योतिष-शास्त्र जानता है? मुल्ला
ने कहा, ज्योतिष-शास्त्र! यह क्या बला है? उस पंडित ने अपने सिर से हाथ ठोक कर कहा कि तेरी चार आना जिंदगी और बेकार गई। जो आदमी ज्योतिष ही नहीं जानता, वह और क्या जीवन को जानेगा? तेरी आठ आना जिंदगी बेकार हो गई।
और तभी जोर का तूफान आया और आंधियां घिर गईं और बादल घिर गए और नाव डगमगाने लगी। उस मुल्ला ने कहाः पंडित जी आपको तैरना आता है? पंडित जी ने कहा, बिल्कुल नहीं! उस मुल्ला ने कहाः यह सोलह आना जिंदगी बेकार हो गई। मैं कूद कर जाता हूं। गणित मुझे नहीं आता, न ज्योतिष मुझे आता है, लेकिन तैरना

मुझे आता है। और मैं जा रहा हूं, अब नाव डूबने के करीब है। अब आपकी सोलह आना जिंदगी खराब होगी।
जिंदगी में वह जो नोइंग अबाउट है, चीजों के संबंध में जानना, वह किसी बहुत मूल्य का नहीं है। सत्य के आमने-सामने खड़े होने का तो कुछ मतलब है, सत्य के संबंध में जानने का कोई भी मतलब नहीं।
लेकिन बाहर से जो भी हम जानते हैं, वह संबंध में ही जानते हैं, वह कभी
हम सत्य को नहीं जानते। हम जान भी नहीं सकते हैं, यह स्पष्ट हो जाना चाहिए तो उस दिशा में हमारी यात्रा होनी बंद हो जाए। कोई आदमी आकर आपसे कह सकता है कि सत्य ऐसा है, सत्य वैसा है, आपको इससे क्या पता चलेगा? कोई आदमी आकर कह सकता है ईश्वर ऐसा है, ईश्वर वैसा है, आप इससे क्या जान लेंगे? सिवाय शब्दों के आप कुछ भी नहीं जान लेंगे।
और अकेले शब्दों में कुछ भी नहीं होता। हम जिंदगी में ऐसी भूल नहीं करते हैं। हम जिंदगी में ऐसी भूल नहीं करते, भाषाकोश में लिखा हुआ है घोड़ा, उसको हम घोड़ा समझ कर उसके ऊपर सवारी नहीं करते। घोड़ा अस्तबल में बंधा हुआ है, उस पर सवारी करते हैं। शब्दकोश में भी लिखा हुआ है घोड़ा, लेकिन उस पर सवारी नहीं करते हैं। न हम उस शब्द को घोड़ा मान लेते हैं। जिंदगी के आम हिसाब में हम कभी शब्दों को सत्य नहीं मानते। लेकिन सत्य की खोज में हमने शब्दों को ही सत्य मान लिया है! एक किताब में लिखा हुआ है ईश्वर, हम उसको नमस्कार करते हैं किताब को! क्योंकि उसमें लिखा हुआ है ईश्वर! जैसे कि कोई घोड़े पर सवारी कर रहा हो! ईश्वर-लिखी किताब में पैर लग जाता है तो घबड़ा जाते हैं कि ईश्वर को पैर लग गया!
शब्द को लगा हुआ पैर ईश्वर को लगा हुआ पैर नहीं है। शब्द में कुछ भी नहीं, शब्द कोरे कागज पर खींची हुई लकीर से ज्यादा नहीं!
लेकिन एक आदमी कहता है कि धर्मशास्त्रों को हम सम्हाल कर सिर पर ले जा रहे हैं। कोई शास्त्र धर्मशास्त्र नहीं है। क्योंकि धर्मशास्त्र वह शास्त्र हो सकता है, जिसमें सत्य हो। और किसी शास्त्र में सत्य नहीं हो सकता, सिर्फ शब्द होते हैं। शब्दों को हम घोड़ा कभी नहीं मानते, लेकिन शब्दों को ईश्वर जरूर मानते हैं! शब्दों की पूजा चलती है! शब्दों को कंठस्थ कर लेते हैं, शब्दों को दोहराते रहते हैं और उन दोहराए हुए शब्दों को समझते हैं कि हम जानते हैं!
एक आदमी अगर गीता को कंठस्थ कर लेता है तो वह ज्ञानी हो जाता है! गीता
को कंठस्थ करने से कोई ज्ञानी कैसे हो जाएगा? स्टुपिड, बुद्धिहीन आदमी का लक्षण है किसी चीज को कंठस्थ करना। बुद्धिमान आदमी का लक्षण नहीं है। लेकिन अगर गीता कंठस्थ हो गई, या कुरान कंठस्थ हो गया और उसकी आयतें कोई कोई आदमी पूरा दोहराने लगा तो वह ज्ञानी समझा जाता है! उसके पास है क्या? शब्दों की रिकार्डिंग, शब्दों का जोड़-तोड़ उसके पास है। शब्द उससे छीन लो, उसके पास पीछे कुछ भी नहीं। उसके पास उतना ही ईश्वर है, जैसा किसी ने घोड़ा याद कर लिया हो और, कंठस्थ घोड़ा कर लिया हो। जितना घोड़ा उसके पास है, उतना ही ईश्वर को कंठस्थ करने वाले के पास ईश्वर है।
लेकिन एक आदमी को घोड़ा शब्द कितना ही कंठस्थ हो जाए तो हम कभी यह नहीं मानते कि उसके पास घोड़ा है। लेकिन ईश्वर का शब्द कंठस्थ हो जाए तो हम मानने लगते हैं कि इस आदमी के पास ईश्वर है! सत्य के संबंध में हमने शब्दों को ही स्वीकार कर लिया है और कुछ भी नहीं है पीछे! बाहर से शब्द ही आ सकते हैं, भीतर से आता है सत्य। यह बहुत साफ हो जाए तो हम बाहर के उलझाव से मुक्त हो सकते हैं और भीतर की यात्रा कर सकते हैं। जब तक हमें यह ख्याल है बाहर से मिल जाएगा, तब तक हमसे यह यात्रा नहीं हो सकती।
रूस में एक बहुत अदभुत विचारक था, आस्पेंस्की। एक फकीर था, कोकेसियस में गुरजिएफ। आस्पेंस्की उससे मिलने गया। आस्पेंस्की जब उससे मिलने गया, तब तक आस्पेंस्की की कई किताबें प्रकाशित हो चुकी थीं। और एक किताब में तो इतनी प्रसिद्धि उसको मिली थी कि लोग कहते हैं कि दुनिया में उसमुकाबले की सिर्फ तीन ही किताबें हैं। एक अरस्तू ने लिखी है किताब, यूनान के बड़े दार्शनिक ने। उस किताब का नाम, आरगेनम। वह है सत्य का पहला सिद्धांत। फिर बेकन ने दूसरी किताब लिखी है, नोवम आरगेनम, सत्य का दूसरा सिद्धांत। और

तीसरी किताब ऑस्पेंस्की ने लिखी है, टरसीयम आरगेनम, सत्य का तीसरा सिद्धांत। तो लोग कहते हैं कि बस ये तीन ही किताबें हैं अदभुत।
आस्पेंस्की की किताब छप गई थी। उसकी बड़ी कीर्ति और प्रसिद्धि फैल गई थी। वह गुरजिएफ से मिलने गया। गुरजिएफ एक बिल्कुल ही गांव का फकीर। गुरजिएफ से जाकर उसने पूछा कि मैं आपसे कुछ पूछने आया हूं। आस्पेंस्की ने कहा कि मैं आपसे कुछ पूछने आया हूं, आस्पेंस्की बड़ा पंडित था।
गुरजिएफ ने एक कोरा कागज उसको दे दिया और कहा कि पहले इस पर तुम लिख दो, कि तुम जो जानते हो और नहीं जानते हो। क्योंकि जो तुम जानते हो, उस संबंध में मैं कोई बात नहीं करूंगा। क्योंकि तुम जानते ही हो, बात खत्म हो गई। जिस संबंध में तुम नहीं जानते, उस संबंध में कुछ बात करूंगा तो तुम्हें कुछ फायदा हो सकेगा। कहा, जाओ इस कोने में बैठ जाओ और जिन संबंध में तुम्हें मुझसे पूछना हो, ईश्वर, आत्मा, मोक्ष--लिख दो कि किस संबंध में तुम जानते हो और किस में नहीं जानते।
आस्पेंस्की कागज लेकर बैठा और बहुत मुश्किल में पड़ गया। सोचने लगा, ईश्वर को मैं जानता हूं। तो ख्याल आया ईश्वर के संबंध में जानता हूं, ईश्वर को तो बिल्कुल नहीं जानता। आत्मा को जानता हूं? तो ख्याल आया आत्मा के संबंध में जानता हूं, आत्मा को तो बिल्कुल नहीं जानता। घंटे भर कलम-दवात लिए, कागज लिए बैठा रहा। एक शब्द लिखने की हिम्मत न पड़ी!
लौट कर कोरा कागज गुरजिएफ के हाथ में दे दिया और कहा कि क्षमा करना, यह
तो मुझे आज तक ख्याल ही नहीं आया, तुमने एक मुसीबत खड़ी कर दी। मैं तो समझता था कि मैं जानता हूं। लेकिन तुमने इतने जोर से पूछा और तुम्हारी आंखों को देख कर मुझे डर पैदा हो गया कि यह आदमी भागने नहीं देगा। अगर इससे कहा कि जानता हूं तो पकड़ लेगा, तो मेरी हिम्मत नहीं पड़ती कि मैं कुछ लिखूं।
तब गुरजिएफ ने कहा कि वह जो तुमने अब तक बड़ी-बड़ी किताबें लिखी हैं, वे कैसे लिखीं? तुम्हारी किताबों की तो बड़ी कीर्ति है! वे किताबें तुमने कैसे लिखीं?
आस्पेंस्की ने कहाः अब तक मुझे यही ख्याल था कि मैं जानता हूं। लेकिन
आज जब यह सवाल सीधा सामने खड़ा हो गया, यह कभी खड़ा ही नहीं हुआ। तो मुझे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता। शब्दों की यात्रा कर ली है मैंने। बहुत से शब्द सीख लिए हैं, इसी को मैंने ज्ञान समझ लिया है। मेरा जहां तक जानने का संबंध है, मैं कुछ भी नहीं जानता।
गुरजिएफ ने कहाः कि फिर अब तुम कुछ जान सकते हो, क्योंकि जानने योग्य पहली बात तुमने जान ली है कि तुम कुछ भी नहीं जानते हो। यह पहली बात तुमने जान ली।
यह ज्ञान का पहला चरण है कि तुम कुछ भी नहीं जानते। यह बड़ी हिम्मत की बात है। यह समझ लेना कि मैं नहीं जानता हूं कुछ, बड़ी हिम्मत की बात है। क्योंकि भीतर से अहंकार यही कहता है कि ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं नहीं जानता हूं? इतने दिन से गीता पढ़ता हूं, इतने दिन से उपनिषद पढ़ता हूं, इतने दिन से मंदिर जाता हूं, सत्संग करता हूं, यह कैसे हो सकता है कि मैं नहीं जानता हूं?
तलवारें निकल आती हैं जानने पर कि मेरा जानना सही है! दूसरा कहता है
कि मेरा जानना सही है! जिस संबंध में कुछ भी पता नहीं, उस संबंध में हम दावेदार हो जाते हैं।
और अगर अब तक हम कुछ भी नहीं जान सके हैं शब्दों को सीख कर तो आगे भी शब्दों को सीख कर हम कुछ नहीं जान सकते हैं। एक जन्म नहीं, अनंत जन्मों तक हम शब्दों को सीखते रहें, तब भी हम कुछ नहीं जान सकते हैं। शब्दों को सीखने वाला ज्ञान के भ्रम में होता है, ज्ञान को कभी उपलब्ध नहीं होता।
फिर कैसे जान सकते हैं? फिर जानने का मार्ग क्या है?
अब तक तो हम यही सोचते थे कि अध्ययन, मनन--यही ज्ञान का मार्ग हैं। अब
तक यही हमें कहा जाता रहा है कि किताबें पढ़ो, सत्संग करो, ज्ञानियों की बातें सुनो, और तुम भी जान लोगे! यह सरासर झूठी बात है। कितनी ही किताबें पढ़ो और कितने ही ज्ञानियों का सत्संग करो, कभी भूलकर कुछ भी नहीं जान सकोगे।

आज तक सत्संग से कभी किसी ने कुछ नहीं जाना। आज तक शास्त्र को पढ़ कर कभी किसी ने कुछ नहीं जाना। हां, जानने का भ्रम जरूर पैदा हो जाता है। और जानने का भ्रम अज्ञान से भी ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि अज्ञानी को तो यह भी पता रहता है कि मैं नहीं जानता हूं, तो शायद वह कभी जानने की कोई खोज करे। लेकिन ज्ञान के भ्रम में यही कठिनाई हो जाती है--उसे लगता है, मैं जानता हूं और अब जानने को कुछ बच नहीं रह जाता।
यह दुनिया अज्ञान के कारण परेशान नहीं है, झूठे ज्ञान के कारण, सुडो नालेज के कारण परेशान है। यह जो हम सत्य से इतने दूर हैं, यह दूर अज्ञान के कारण दूर नहीं हैं हम, यह दूरी झूठे ज्ञान के कारण, मिथ्या ज्ञान के कारण है।
सुकरात जब बूढ़ा हो गया तो सुकरात ने खबर कर दी एथेंस में कि जाओ सबसे
कह दो कि कोई मुझे भूल कर ज्ञानी न कहे। जब मैं जवान था, तब मुझे यह भ्रम था कि मैं जानता हूं। जैसे-जैसे मेरी समझ बढ़ी उसके शब्द सोचने जैसे हैं। उसने कहा कि जैसे-जैसे मेरी समझ बढ़ी, वैसे-वैसे वह मेरा ज्ञान सब हवा होता चला गया। जैसे-जैसे समझ बढ़ी वैसे-वैसे ज्ञान हवा हो गया और अब जब कि समझ पूरी बढ़ गई है, मैं कहता हूं कि मुझसे बड़ा अज्ञानी खोजना मुश्किल है, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
एथेंस के बूढ़े लोगों ने उस दिन खुशी जाहिर की और कहा कि सुकरात मालूम होता है, ज्ञान के मंदिर में प्रविष्ट हो गया।
लोगों ने कहाः वह तो खुद कह रहा है, कि मुझसे बड़ा अज्ञानी नहीं है और तुम कहते हो कि ज्ञान के मंदिर में प्रविष्ट हो गया!
तो उन बूढ़ों ने कहा कि पागलो, तुम्हें पता ही नहीं ज्ञान के मंदिर में केवल वे ही प्रविष्ट होते हैं, जिनको ज्ञान का भ्रम छूट जाता है; जो कहते हैं, हम नहीं जानते। जो इतने सरल हो जाते हैं कि कह देते हैं कि हमें पता नहीं, ज्ञान के मंदिर के द्वार उनके लिए खुल जाते हैं। क्योंकि जो यह समझ लेता है कि मैं नहीं जानता, उसकी आंख बाहर से भीतर की तरफ लौटनी शुरू हो जाती है। बाहर के ज्ञान से छुटकारा होते ही मनुष्य भीतर के ज्ञान की दिशा में प्रविष्ट होना शुरू हो जाता है।
जब तक यह ख्याल है कि मैं जानता हूं, जब तक यह ख्याल है कि बाहर से जाना
जा सकता है। जब तक यह ख्याल है कि शास्त्र और शब्दों से जाना जा सकता है, तब तक कोई भीतर की तरफ नहीं मुड़ता, वह टर्निंग नहीं आती, वह मुड़ना नहीं पैदा होता।
यह दूसरे सूत्र में शब्दों के जाल से मुक्त हो जाना जरूरी है। और उनके जाल से हम तभी मुक्त होंगे, जब हम स्पष्ट जान लें कि शब्द सदा असत्य। शब्द कभी भी सत्य नहीं। शब्द सदा असत्य है, शब्द कभी भी सत्य नहीं है। शब्द से कभी सत्य नहीं कहा गया है, न कहा जा सकता है। शब्द सीख कर न कभी शब्द से सत्य जाना गया है, न जाना जा सकता है। जो शब्दों से मुक्त होते हैं, और शब्दों से मुक्त होने का मतलब ही भीतर जाना शुरू हो जाता है। क्योंकि बाहर हैं शब्द और भीतर है शून्य, भीतर कोई शब्द नहीं हैं।
यह दूसरी बात, यह दूसरा सूत्र है--सत्य की खोज में ज्ञान से मुक्त हो जाएं। ज्ञान जो सीखा हुआ है, ज्ञान जो कल्टीवेटेड है, ज्ञान जो दूसरों से मिला है--उधार, बारोड, उससे मुक्त हो जाएं; ताकि वह ज्ञान खोजा जा सके-- अनबारोड, जो कभी किसी से नहीं मिलता, जो भीतर मौजूद है। वह ज्ञान मिल सके, जो किसी किताब में नहीं लिखा, जो स्वयं के प्राणों में लिखा है। वह ज्ञान मिल सके, जिसकी भीख नहीं मांगनी पड़ती, जो खुद के भीतर से आता है और जीवन पर छा जाता है। वही ज्ञान सत्य है। क्योंकि उस ज्ञान को फिर छीना नहीं जा सकता। जो दूसरे से मिला है, वह छीना जा सकता है। जो अपने से आता है, वही अपना है और कभी नहीं छीना जा सकता। जो ज्ञान दूसरों से सीखा है, संदिग्ध है, हमेशा संदिग्ध है। उस पर कभी श्रद्धा नहीं हो सकती। जो ज्ञान अपने से आता है, वह असंदिग्ध है। उस पर संदेह का कभी कोई सवाल नहीं उठता। विवेकानंद अपनी खोज में थे, सत्य की। महर्षि देवेंद्रनाथ के पास वे गए। अंधेरी रात थी और महर्षि एक बजरे पर गंगा में निवास करते थे। विवेकानंद पानी में कूद कर आधी रात में बजरे पर पहुंच गए। द्वार को धक्का दिया, जाकर महर्षि की गरदन पकड़ ली। वे ध्यान में बैठे थे। घबड़ा कर

उन्होंने आंख खोली। कोई युवक, पानी में लथपथ, आधी रात में दरवाजे पर खड़ा था। और विवेकानंद पूछने लगे कि मैं जानना चाहता हूं, ईश्वर है?
बहुत पूछने वाले लोग महर्षि देवेंद्रनाथ के पास आए होंगे, लेकिन ऐसा आदमी कभी नहीं आया। गरदन पकड़ कर किसी से ईश्वर के संबंध में पूछा जाता है! और आधी रात बेवक्त पानी को तैर कर आ गया है यह युवक!
वह भी घबड़ा गए होंगे, एक क्षण को झिझक गए। कहा कि बेटा, बैठ जाओ, फिर मैं बात करूं। विवेकानंद ने कहा, बात खत्म ही हो गई, आपकी झिझक ने सब कुछ कह दिया। वह आदमी तो, विवेकानंद कूद कर वापस चला गया। महर्षि बुलाते रहे कि सुनो भी, बैठो भी। उसने कहा, बात खत्म हो गई!
यही युवक दो महीने बाद रामकृष्ण के पास गया। उसी ढंग से जाकर रामकृष्ण को पकड़ लिया और कहा कि ईश्वर है? रामकृष्ण ने कहाः है, उसके सिवाय और कुछ भी नहीं, तुझे जानना हो तो बोल!
यहां कोई झिझक न थी। और रामकृष्ण ने यह नहीं कहा, कि मैं तुझे समझाऊंगा--"है।" रामकृष्ण ने कहाः तुझे जानना हो तो बोल! यह फिकर छोड़ कि है या नहीं। तुझे जानना है कि नहीं, यह बता।
विवेकानंद ने कहा है कि पहली दफा मैं झिझक कर खड़ा हो गया। अब तक मैं लोगों को पकड़ कर झिझका देता था। क्योंकि अभी तक मैंने यह सोचा ही नहीं था कि मुझे जानने की तैयारी है या नहीं। रामकृष्ण के पास कुछ बात और थी। जिनसे पहले पूछा था, उनके पास सीखे हुए शब्द होंगे, भीतर उनके खुद भी संदेह होगा।
रामकृष्ण के पास अपना अनुभव था, शब्द नहीं थे। अनुभव के पास झिझक नहीं होती। अनुभव बेझिझक है, अनुभव असंदिग्ध है, वह इनडिबेटिवल है, उसमें कोई संदेह नहीं।
लेकिन ऐसा ज्ञान सदा भीतर से आता है, जो असंदिग्ध है और जो मुक्त करता है। भीतर से वह आ सके, उसके पहले बाहर के ज्ञान से मुक्त हो जाना जरूरी है। क्योंकि जो बाहर के ज्ञान को ज्ञान समझ कर रुका रहता है, वह कभी भीतर की तरफ नहीं मुड़ता।
जिस आदमी ने कंकड़-पत्थर को हीरे-जवाहरात समझ रखे हों और कंकड़-पत्थरों
को तिजोरी में बंद करके बैठा हो, वह आदमी कभी हीरे-जवाहरात खोज सकता है? हीरे-जवाहरात की खोज में पहला काम तो यह होगा कि वह जान ले कि जिनको उसने अब तक पकड़ा है, वह कंकड़-पत्थर है। वह तिजोरी खाली करके फेंक दे। हीरे- जवाहरात की खोज में पहले यह जान लेना जरूरी है कि पत्थर क्या है, कंकड़ क्या है? कंकड़-पत्थर हीरे नहीं हैं, यह जान लेना पहले जरूरी है। तभी हीरों को खोजा जा सकता है कि हीरे क्या हैं।
ज्ञान क्या नहीं है, ज्ञान की खोज में पहले यह ज्ञान जान लेना जरूरी है। जो भी बाहर से सीखा गया है, वह ज्ञान नहीं। जो भी शब्दों से आया है, वह ज्ञान नहीं है। जो भी दूसरों से आया है, वह ज्ञान नहीं। यह बहुत स्पष्ट हो जाए कि ऐसा ज्ञान झूठ है तो फिर उस जानने की खोज हो सकती है, जो कि सत्य होगा।
इसलिए दूसरे सूत्र में मैं कहता हूं, ज्ञान से मुक्त हो जाएं, ताकि वास्तविक ज्ञान उपलब्ध हो सके। ज्ञान से छूट जाएं, ताकि ज्ञान का जन्म हो सके। ज्ञान से मुक्त हो जाएं ताकि ज्ञान के मंदिर में प्रवेश हो सके। इस दूसरे सूत्र को सोचते हुए थोड़ा जाएंगे कि मेरे पास जो भी ज्ञान है, वह मेरा है? यह एक प्रश्न छोड़ कर आज की बात मैं पूरी करता हूं।
यह पूछते हुए जाना कि जो भी मैं जानता हूं, वह मेरा है? वह मैं जानता हूं? और अगर मैं नहीं जानता हूं तो उसका कोई भी उपयोग नहीं। अगर मैं नहीं जानता हूं तो वह ज्ञान नहीं। बासी, उधार, मरी हुई बातें हैं, इनफर्मेशन है, नालेज नहीं। सूचनाएं हैं, खबरें हैं, अफवाहें हैं।
और मजे की बात है कि हम आदमियों के संबंध में तो अफवाहें मान ही लेते हैं। सत्य के संबंध में भी अफवाहें मान लेते हैं!
यह अपने से पूछना कि जो मैं जानता हूं, वह मैं जानता हूं? बहुत कठोर है
यह प्रश्न और बहुत निर्मम। क्योंकि यह प्रश्न अहंकार को बहुत दुख पहुंचाएगा। क्योंकि अब तक यह ख्याल था कि मैं जानता हूं। वह यह प्रश्न सारा ख्याल छीन लेगा। एक-एक ईंट गिर जाएगी उस जानने की। इस एक कसौटी पर

अपने सारे जानने को कस लेना कि जो मैं जानता हूं, वही ज्ञान हो सकता है। जो मैं नहीं जानता हूं, वह दुनिया जानती हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह मेरे लिए ज्ञान नहीं है।
और अगर यह स्पष्ट हो जाए कि वह मेरे लिए ज्ञान नहीं है तो फिर तीसरे सूत्र पर काम आगे हो सकता है। उसके पहले तीसरे सूत्र पर काम नहीं हो सकता। एक सीढ़ी हम छोड़ें तो नई सीढ़ी पर पैर रखा जा सकता है। अगर हम पिछली सीढ़ी
न छोड़ें तो नई सीढ़ी पर पैर नहीं रखा जा सकता।
नई सीढ़ी पर पैर रखने के लिए पुरानी सीढ़ी छोड़ देनी पड़ती है। पुरानी भूमि से पैर उठा लेते हैं, तब नई भूमि पर पैर रखा जा सकता है।
अगर जिद हो कि हम पुरानी भूमि पर पैर रखे रहेंगे, और हमें चलने का रास्ता बताया जाए, तो चलना नहीं हो सकता। ज्ञान को जाने दें, जिसको पकड़ा है, सीखा है। तो फिर वह ज्ञान आ सकता है जो अनसीखा है, अनलर्नड है। उसके तीसरे सूत्र में हम बात करेंगे।

अभी इस सूत्र के बाद दस मिनट के लिए हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
रात को बहुत भीड़ हो जाती है तो शायद उतना आसान नहीं पड़ता। अभी थोड़े लोग हैं तो हम दस मिनट के लिए ध्यान के लिए बैठें। ध्यान बहुत सरल सी बात है। दो-तीन बातें समझ लें। पहली बात तो यह कि थोड़ा इतने फासले पर हो जाएं कि कोई किसी को छूता हुआ न हो। अगर बहुत भीड़ में आप हों तो बाहर उठ आएं, दूसरी जगह बैठ जाएं। कोई किसी का स्पर्श न करता हो...
ध्यान का अर्थ हैः भीतर जाना। वह तो कल तीसरे सूत्र में हम पूरी तरह समझने की कोशिश करेंगे। लेकिन तैरने के संबंध में जानने के पहले तैरना जान लेना बहुत अच्छा है। तो थोड़ा हम भीतर कूदें और तैरें। एक बहुत सरल सा मार्ग है। और वह सरल मार्ग यह है कि बाहर के प्रति जितना चित्त जागरुक हो उतना ही भीतर चला जाता है। इस छोटे से सूत्र को समझ लें। बाहर के प्रति चित्त जितना जागरुक हो उतना ही गहरे भीतर चला जाता है। अभी दस मिनट में हम जागरुकता का, अवेयरनेस का, होश का, एक प्रयोग करेंगे। यहां वृक्षों में हवाएं चल रही हैं। पत्तों में आवाज हो रही है, पक्षी आवाज करेंगे; सुबह की हवाओं की खबर होगी। चारों तरफ धीमी-धीमी आवाज। धूप है, हवाएं हैं, पक्षी हैं।
दस मिनट के लिए हम आंख बंद कर लेंगे और दस मिनट हम बाहर के जगत के प्रति परिपूर्ण होश रखने की कोशिश करेंगे...
एक भी पक्षी की आवाज हमारे बिना सुने न गुजर जाए। एक भी पत्ते का हिलना हमारे बिना जाने न गुजर जाए। चारों तरफ ध्वनियों का जो जाल है--वह हम जानते रहें, हमें पता चलता रहे, होश बना रहे। जितने जोर से आप जागेंगे इस बाहर के जगत के प्रति, आप हैरान हो जाएंगे, उतने ही गहरे भीतर प्रवेश हो जाएगा। उतनी ही भीतर एक शांति और एक अदभुत आनंद का भाव पैदा हो जाएगा। तो हम बैठें। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह करने से जाना जा सकता है। उसे करें और जानें। बैठें... शरीर को ढीला और आसान छोड़ दें। कोई तनाव शरीर पर न हो। आंख बिल्कुल आहिस्ता से बंद कर लें। उस पर भी कोई जोर न हो। भींचे ना। धीमे पलकों को छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें। बिल्कुल आराम से बैठ जाएं। बिल्कुल शांत बैठ जाएं।
सुनें... पक्षियों की आवाजें हैं। हवाओं की आवाजें हैं। शांत, मौन, बाहर जो भी हो रहा है... उसे सुनें। सिर्फ सुनें... पूरे होश से सुनते रहें। सुनें... अनुभव करें... बाहर जो भी हो रहा है। जागे हुए अनुभव करें... हवाएं शरीर को स्पर्श करेंगी... उसका अनुभव होगा। पक्षियों की आवाजें गूंजेगी... उसका अनुभव होगा। आज अनुभव के एक बिंदु मात्र रह जाएं... एक अनुभोक्ता... एक साक्षी... एक विटनेस। आप देख रहे हैं... सुन रहे हैं... जान रहे हैं। बस... सिर्फ एक ध्यान मात्र हैं। आप सिर्फ जान रहे हैं... जो भी हो रहा है... जाग कर। एक दस मिनट के लिए मात्र, ज्ञान मात्र रह गए हैं... सुनें... पूरे होश से सुनें। दस मिनट के लिए सिर्फ सुनते... जागते हुए रह जाएं...
सुनते रहें... जानते रहें... जागे रहें। पूरे होश से एक-एक चीज अनुभव करें। हवाओं को... सूरज की किरणों को... पक्षियों की आवाज को। और जैसे-जैसे अनुभव करेंगे... मन वैसे-वैसे शांत होता जाएगा। मन शांत होता जा रहा है... मन

धीरे-धीरे शांत होता जा रहा है। मन बिल्कुल शांत हो जाएगा... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... मन शांत हो रहा है... सुनें... अनुभव करें। जितना तीव्रता से अनुभव करेंगे, मन उतना ही शांत हो जाएगा। हवाओं को, सूरज की किरणों को, पक्षियों के गीतों को... एक साक्षी होकर रह जाएं... मन शांत हो रहा है। मन धीरे-धीरे बिल्कुल शांत हो जाएगा। सुनें... एक साक्षी मात्र रह जाएं... सब... जान रहे हैं... पक्षियों की आवाजें सुन रहे हैं... हवाओं का अनुभव कर रहे हैं... एक साक्षी मात्र जो हो रहा है... उसे जान रहे हैं। चुपचाप... मन शांत हो जाएगा... मन धीरे-धीरे बिल्कुल शांत हो जाएगा...
मन शांत हो रहा है... मन गहरे में शांत होता जा रहा है। मन शांत हो रहा है... मन शांत हो गया है...

सत्य की खोज
तीसरा प्रवचन

श्रद्धा से सत्य की ओर
(26 फरवरी 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मैं कहता हूं सत्य शब्दों सें नहीं मिल सकता है, शास्त्रों से नहीं मिल सकता है, गुरुओं से नहीं मिल सकता है, तो फिर मैं प्रतिदिन क्यों बोलता हूं? क्योंकि मेरे बोलने से भी सत्य नहीं मिल सकेगा।

मेरे बोलने से भी सत्य नहीं मिलेगा, इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। किसी
के भी बोलने से सत्य नहीं मिल सकता है। एक कांटा पैर में लग गया हो तो दूसरे कांटे से लगे हुए कांटे को निकाला जा सकता है। लेकिन कांटे के निकल जाने पर दोनों कांटे एक जैसे व्यर्थ हो जाते हैं और फेंक देने के योग्य हो जाते हैं।
मैं जो बोल रहा हूं, उससे सत्य नहीं मिल सकता है। लेकिन जो दूसरे शब्द आपने पकड़ रखे हैं और समझ लिया है कि वह सत्य है, उन कांटों को मेरे बोलने के कांटों से निकाला जा सकता है। निकल जाने पर दोनों कांटे एक जैसे व्यर्थ हो जाते हैं और फेंक देने के योग्य।
मेरे शब्दों से सत्य नहीं मिलेगा, क्योंकि किसी के शब्दों से सत्य नहीं मिल सकता है। लेकिन शब्द, शब्दों को छीन सकते हैं। और शब्द छिन जाएं, और मन खाली हो जाए, और मन के ऊपर शब्दों की कोई पकड़ न रह जाए, कोई क्लिंगिंग न रह जाए तो मन स्वयं ही सत्य को उपलब्ध हो जाता है।
सत्य कहीं बाहर नहीं है, वह प्रत्येक के पास है, निकट है, स्वयं में है।
एक बार मन बाहर की तरफ देखना बंद कर दे तो सत्य को पा लेना कठिन नहीं है।
और जब तक कोई गुरुओं की तरफ देखता है, तब तक बाहर देखता है। जब तक कोई शास्त्रों की तरफ देखता है, तब तक बाहर देखता है। जब तक किन्हीं दूसरों के शब्दों को कोई पकड़ कर बैठता है, तब तक उसे वह उपलब्ध नहीं हो सकता, जो निःशब्द में और मौन में ही मिलता है। जिन्होंने सत्य को जाना है, उन्होंने बहुत प्रकार की चेष्टाएं की हैं कि वह सत्य आप तक प्रकट हो जाए, लेकिन आज तक यह संभव नहीं हो सका।
मैंने सुना है, एक महाकवि समुद्र के किनारे गया था। सुबह ही सुबह जब
वह समुद्र के किनारे पहुंचा, आकाश से सूरज की रोशनी बरसती थी। ठंडी हवाएं सागर की लहरों से खेलती थीं। सागर की लहरों पर नाचती हुई उस रोशनी में वह खुद भी नाचने लगा रेत के तट पर। एकांत था, सुंदर सुबह थी, उसे स्मरण आने लगा अपनी प्रेयसी का, जो अस्पताल में बीमार पड़ी थी। और उसे ख्याल आया, काश, आज इस सुंदर सुबह में वह भी यहां मौजूद होती। कवि था, उसकी आंखों से आंसू बहने लगे!
और फिर उसे ख्याल आया, क्यों न मैं एक खूबसूरत पेटी लाऊं और उस पेटी में सुबह के इस छोटे से टुकड़े को भर कर भेज दूं अपनी प्रेयसी के पास।
वह बाजार से एक पेटी ले आया खूबसूरत और उसने आकर बड़े प्रेम से समुद्र
के किनारे उस पेटी को खोला। सूरज की किरणों को, हवा को, सुबह के उस सुंदर छोटे से रूप को उस पेटी में बंद करके ताला बंद कर दिया। एक चिट्ठी लिखी और पेटी एक आदमी के सिर पर रख कर अपनी प्रेयसी के पास भेज दी।
उस पत्र में उसने लिखा कि सुबह के एक छोटे से खंड को तुम्हारे पास भेज रहा हूं। सूरज की किरणों को, समुद्र में नाचती हुई हवाओं को, सुबह के सुंदर एक छोटे से टुकड़े को, एक कतरे को तुम्हारे पास भेजता हूं। नहीं तुम आ सकती हो समुद्र के तट तक, बीमार हो; तो मैं ही समुद्र के तट की एक स्मृति को तुम्हारे पास भेजता हूं। नाच उठोगी जब इस पेटी को खोल कर देखोगी।

उस प्रेयसी को बहुत हैरानी हुई, पेटी में सुबह के टुकड़े कैसे भर कर भेजे जा सकते हैं! पत्र पहुंच गया, पेटी पहुंच गई। उसने पेटी खोली उस पेटी के भीतर कुछ भी न था--न तो सूरज की किरणें थीं, न ठंडी हवाएं थीं, न कोई सुबह थी, वहां तो घुप्प अंधकार था। उस पेटी में तो कुछ भी न था!
समुद्र के किनारे जो दिखाई पड़ता है, उसे पेटियों में भर कर भेजने का कोई उपाय नहीं। और परमात्मा के किनारे और सत्य के सागर के पास पहुंच कर जो अनुभव होता है, उसे तो शब्दों की पेटियों में भर कर भेजने का और भी उपाय नहीं। शब्द आ जाते हैं कोरे और खाली। वह जो किनारे पर जाना है, वह पीछे ही रह जाता है।
जो पहुंच जाते हैं सत्य के तट पर, उनके प्राणों में भी यह पीड़ा, यह प्यास पकड़ती होगी कि जो प्रियजन पीछे रह गए हैं, उन तक खबर पहुंचा दें। वे जो लंगड़ाते हुए रास्ते पर भटक गए हैं उन तक खबर पहुंचा दें। वे जो नहीं आ पाए हैं यहां तक, उन तक भी थोड़ी सी खबर पहुंचा दें। वे शब्दों को पेटियों में भर कर हम तक भेजते हैं। गीता और कुरान और बाइबिल--किताबें पहुंच जाती हैं, शब्द पहुंच जाते हैं, पेटियां पहुंच जाती हैं; लेकिन जो उन्होंने भेजा था, वह वहीं रह जाता है, वह नहीं आता! उनकी करुणा तो प्रकट होती है, लेकिन शब्द आज तक कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हो पाए।
शब्द कभी भी समर्थ नहीं हो सकेंगे। अगर वह प्रेयसी उस पेटी को सिर पर
रख कर नाचने लगे तो हम कहेंगे, पागल है। और अगर वह प्रेयसी उस पेटी को देख कर यह समझ ले कि कुछ भेजने की कोशिश की गई थी, जो नहीं पहुंच सका है। पेटी को लात मार कर फेंक दे और दौड़ पड़े सागर की तरफ तो एक दिन वहां पहुंच जाएगी-- उसी सागर किनारे, जहां सूरज की किरणें नाचती हैं और सुबह की ठंडी हवाएं बहती हैं और सागर की लहरों का नृत्य है। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब पेटी को लात मार कर फेंक दे और उस तरफ दौड़ पड़े, जहां से पेटी में लाने की कोशिश कुछ की थी, लेकिन नहीं ला पाए। तो वह प्रेयसी भी सागर के किनारे पहुंच सकती।
शास्त्रों को फेंक कर जो उस तरफ दौड़ पड़ते हैं, जहां से शास्त्र आते हैं; वे वहां पहुंच जाते हैं, जहां सत्य का किनारा है, जहां सत्य का सागर है।
लेकिन हम उन पागलों की तरह हैं, जो गीताओं को सिर पर रख कर नाचते रहते हैं और वहां नहीं पहुंच पाते, जिस किनारे से कृष्ण ने यह खबर भेजी हो! बाइबिल को सिर पर रख कर बैठ जाते हैं, छाती पर रखकर बैठ जाते हैं और उस किनारे तक नहीं पहुंच पाते, जहां से क्राइस्ट ने यह खबर भेजी है!
और क्राइस्ट और कृष्ण और महावीर और बुद्ध अगर कहीं भी होंगे तो सिर धुन कर रोते होंगे हमें देख कर कि पागलों को हमने खबर भेजी थी कि तुम सागर किनारे आ जाना। वे हमारी खबर को लिए ही बैठे हैं, वे वहीं रुक गए हैं! और अगर उनका बस चले तो लौट कर हमसे किताबें छीन लें। लेकिन अगर कृष्ण भी आ जाएं और गीता छीनने लगें तो हम कृष्ण की गर्दन दबा देंगे कि हमसे गीता छीनते हो? गीता छिन जाएगी तो फिर हमारे पास क्या रह जाएगा? ऐसा हुआ है। दोस्तोवस्की ने एक किताब लिखी है रूस में। उस किताब का नाम है ब्रदर्स करमाझोव। उस अदभुत किताब में उसने यह लिखा है कि अठारह सौ वर्ष बाद जीसस क्राइस्ट को यह ख्याल आया कि अठारह सौ साल पहले मैं पृथ्वी पर गया था, लेकिन तब मुझे मानने वाला एक भी आदमी नहीं था। तब जो लोग मेरे दुश्मन थे, उन्होंने मुझे सूली पर लटका दिया। अब मुझे जाना चाहिए जमीन पर। अब तो आधी जमीन मुझे मानती है। अब तो गांव-गांव में मेरे चर्च हैं, मेरे पुजारी हैं, क्रास लटकाए हुए मेरे पुरोहित हैं। जगह-जगह मेरा प्रचार है। जगह-जगह मेरा नाम है। ऐसी कौन सी जगह है, जहां जीसस का मंदिर न हो? और लाखों संन्यासी जीसस का नाम लेकर सारी पृथ्वी पर प्रचार करते हैं। तो जीसस ने सोचा कि अब मैं जाऊं। अब ठीक समय आ गया है। अब समय पक गया है। अब मेरा स्वागत हो सकेगा।
और एक दिन रविवार की सुबह जेरुसलम के गांव में ईसा उतर कर एक झाड़ के नीचे खड़े हो गए! चर्च से लोग वापस लौटते थे, सुबह की प्रार्थना पूरी करके। उन्होंने एक झाड़ के नीचे एक जीसस को खड़े देखा, वे बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहाः यह कौन आदमी रंग-ढंग बना कर खड़ा हुआ है? यह कौन आदमी है, जो बिल्कुल

जीसस जैसा बन कर खड़ा हो गया है? कोई अभिनेता, कोई नाटक का अभिनेता मालूम होता है! उन्होंने भीड़ लगा ली और मजाक करने लगे! और जीसस से कहा कि मित्र, बिल्कुल बन गए हो; बिल्कुल ऐसे लगते हो, जैसे जीसस क्राइस्ट हो।
जीसस ने कहाः बन गया हूं! मैं वही हूं। लोग हंसने लगे। किसी ने पत्थर फेंका, किसी ने जूता फेंका और कहा कि बड़े पागल हो। भाग जाओ, हमारा पादरी आता है, अगर देख लेगा तो मुसीबत में पड़ जाओगे।
जीसस ने कहा, तुम्हारा पादरी कि मेरा पादरी? तुम मुझे पहचाने नहीं, मैं वही हूं, जिसकी तुम सुबह प्रार्थना करते हो। वे सब लोग खूब हंसने लगे। उन्होंने कहा कि तुम्हारी भलीभांति पूजा हो जाएगी, भाग जाओ।
लेकिन जीसस ने कहा, लोग नहीं पहचानते, कोई हर्ज नहीं, लेकिन मेरा पादरी तो मुझे पहचान लेगा, जो मेरे ही सुबह-शाम गीत गाता है। पादरी आया तो जीसस की जो लोग मजाक उड़ा रहे थे, वे ही लोग पादरी के झुक-झुक कर पैर छूने लगे!
ऐसा ही हुआ है--दुनिया में भगवान आ जाए तो आदमी मजाक उड़ाएगा! और भगवान
की पूजा और धंधा करने वाले जो पुजारी हैं, उनके झुक-झुक कर लोग पैर छूते हैं! पादरी के लोग पैर छूने लगे! जीसस ने कहा, बड़ा गजब है। बड़ा कमाल है, जो मेरे गीत गाता है, उसके पैर छूते हो, मेरी तरफ देखते भी नहीं!
लोगों ने कहाः चुप, अगर पादरी के सामने इस तरह की बातें कहीं तो हम बहुत अपमानित अनुभव करेंगे।
पादरी ने सिर ऊपर उठा कर देखा और कहाः यह कौन बदमाश आदमी यहां खड़ा हुआ है? इसे नीचे उतारो।
जीसस ने कहाः तुम भी मुझे नहीं पहचान रहे हो! तुम तो अपने गले पर मेरा क्रास लटकाए हुए हो। लेकिन जीसस को क्या खबर कि जीसस को जिस सूली पर लटकाया गया था, वह लकड़ी की सूली थी और पादरी सोने का क्रास लटकाए हुए! सोने के कहीं क्रास हुए हैं दुनिया में? और क्रास पर आदमी लटकाया जाता है, क्रास कहीं गले में लटकाया जाता है?
उस पादरी ने कहा, यह आदमी कोई शैतान मालूम पड़ता है! हमारा जीसस एक बार
आ चुका है, अब उसके आने की कोई जरूरत नहीं। उसका काम हम भलीभांति कर रहे हैं।
जीसस को पकड़ लिया गया और जाकर चर्च की एक कोठरी में बंद कर दिया! जीसस
तो बहुत हैरान हुए, यह तो वही काम फिर शुरू हो गया जो अठारह सौ साल पहले हुआ था! क्या मुझे फिर से सूली पर लटकाया जाएगा?
आधी रात पादरी आया, दरवाजा खोला, जीसस के पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि महानुभाव, मैं आपको पहचान गया था। लेकिन बाजार में हम कभी आपको नहीं पहचान सकते। आपकी अब कोई जरूरत नहीं है। काम बिल्कुल ठीक से चल रहा है। हमने दुकान अच्छी तरह जमा ली है। यू आर दी ओल्ड डिस्टर्बर, तुम तो पुराने गड़बड़ करने वाले हो। तुम आए तो फिर सब गड़बड़ कर दोगे। हम बामुश्किल जमा पाते हैं कि तुम वापस लौट-लौट कर आ जाते हो! तुम्हारे आने की कोई जरूरत ही नहीं। हम तुम्हें बाजार में नहीं पहचान सकते हैं! अकेले में हमेशा पहचान होती है। आपकी कोई आवश्यकता नहीं! और गड़बड़ की तो क्षमा करना, हमें वहीं व्यवहार करना पड़ेगा, जो अठारह सौ साल पहले किया गया था!
कृष्ण के साथ भी यही होगा और महावीर के साथ भी यही होगा। और महावीर के साथ जैन यही करेंगे और कृष्ण के साथ हिंदू यही करेंगे और मोहम्मद के साथ मुसलमान यही करेंगे। जिनकी किताबों को पकड़ कर हम बैठे हैं, हमें पता नहीं कि वे सब हमसे किताबें छुड़ा देना चाहते हैं। और जिनके शब्दों को पकड़कर हम बैठे हैं, उन सबने यह कहा है कि शब्दों को पकड़ कर मत रुक जाना। क्योंकि मैं तो वहां उपलब्ध होता हूं, जहां सब शब्द खो जाते हैं।
निःशब्द में, मौन में, जहां सब विचार खो जाते हैं, वहां सत्य की उपलब्धि है।
मेरे शब्दों में भी नहीं होगा। किसी के शब्दों में भी कभी नहीं होता। फिर मैं किसलिए बोल रहा हूं? सिर्फ इसलिए कि आपसे शब्द छीन लूं। आपको शब्द देने के लिए नहीं, आपसे शब्द छीनने के लिए। कांटे से जैसे कोई कांटे को निकाल ले और फिर दोनों कांटे व्यर्थ हो जाएं। अगर आपके मन में चुभे हुए शब्दों को मैं अपने शब्दों से खींच लूं तो बात खत्म हो गई। आप उन शब्दों से

भी मुक्त हो गए और मेरे शब्दों से भी। और वह जो शब्दों से खाली मन है, वही खाली मन प्रभु की यात्रा कर पाता है, सत्य की यात्रा कर पाता है। यह बड़े दुख की बात है, दुर्भाग्य की भी कि जो हमें छुड़ाने के लिए आते हैं, हम उन्हीं को पकड़ लेते हैं!
बुद्ध ने कहा था अपने भिक्षुओं को कि मेरी कोई मूर्ति मत बनाना। आज जमीन पर बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं, उतनी किसी दूसरे आदमी की नहीं! अकेले बुद्ध की इतनी मूर्तियां हैं, जितनी किसी दूसरे आदमी की नहीं! उर्दू में तो बुत शब्द बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। बुद्ध का मतलब ही मूर्ति हो गया है। बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध का मतलब ही मूर्ति हो गया! एक-एक मंदिर में दस-दस हजार बुद्ध की मूर्तियां हैं!
चीन में एक मंदिर है, दस हजार मूर्तियों वाला मंदिर! उसमें दस हजार बुद्ध की मूर्तियां हैं। और बुद्ध ने कहा था कि मेरी पूजा मत करना!
बड़े अजीब लोग हैं हम, जो हमसे कहे कि हमें मत पकड़ना, हम उसे और जोरों से पकड़ लेते हैं कि बहुत प्यारा आदमी है। कहीं भाग न जाए, कहीं छूट न जाए। यह जो हमारी आदत है--जो शब्दों को, व्यक्तियों को पकड़ लेने की, इस आदत ने हमें गुलाम बना दिया है। और अगर पुराने आदमी छूट जाते हैं तो हम नए पैदा कर लेते हैं! लेकिन हम छोड़ते नहीं पीछा!
अगर महावीर और बुद्ध थोड़े छूट गए हैं, कृष्ण और राम थोड़े दूर पड़ गए हैं
तो हम गांधी को पैदा कर लेंगे और गांधी को पकड़ लेंगे! लेकिन हमें पकड़ने को कोई न कोई चाहिए। हम खुद अपने पैरों पर खड़े नहीं होना चाहते। और मैं कहता हूं कि वही आदमी अपने को आदमी कहने का हकदार है, जो सबको छोड़ कर खुद को पकड़ कर खड़ा हो जाता है।
सबको जो छोड़ देता है, वही खुद को पकड़ सकता है।
और ध्यान रहे, जो दूसरों को पकड़ता है, उसकी अपने पर, स्वयं पर कोई श्रद्धा नहीं है। दूसरों को वही पकड़ता है, जो अपने प्रति अश्रद्धावान हो। खुद को जितना कमजोर पाता है, वह उतना दूसरों को पकड़ कर मजबूत अनुभव करना चाहता है। खुद के प्रति जो अश्रद्धा है, वही दूसरों के प्रति श्रद्धा बनती है।
जो व्यक्ति खुद के प्रति श्रद्धावान है, वह आदमी किसी को भी नहीं पकड़ता है।
और मजे की बात है कि जो आदमी अपने को ही नहीं पकड़ पाता है, वह दूसरे को पकड़ सकता है? जिसका अपने पर कोई वश नहीं है, वह दूसरों को क्या वश में कर पाएगा? जिसे अपना ही सुराग, अपना ही कुछ पता नहीं, वह महावीर और बुद्ध की धूल पर बने हुए चिह्नों को पकड़ कर बैठ जाए तो उसे क्या मिल जाएगा?
स्वयं पर श्रद्धा धर्म है, दूसरों पर श्रद्धा धर्म नहीं। जो दूसरों
पर श्रद्धा करता है, वह स्वयं पर अश्रद्धा करता है। स्वयं के पास परमात्मा ने वह सब दिया है, जो किसी और को दिया है। लेकिन हमें श्रद्धा होगी तभी। स्वयं के पास वह सब है छिपे हुए अर्थों में, जो किसी के भी पास प्रकट कभी हुआ हो--किसी राम के पास, किसी बुद्ध के पास, किसी महावीर के पास, किसी गांधी के पास।
जो भी प्रकट होता है, वह बीज रूप में हर आदमी के पास छिपा हुआ है।
और जब मैं यह कहता हूं कि उन्हें छोड़ दो तो मेरी उनसे कोई दुश्मनी नहीं। जिनको मैं छोड़ने के लिए कहता हूं, उनसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। उनसे क्या दुश्मनी हो सकती है? इतने प्यारे लोगों से क्या दुश्मनी हो सकती है? जब मैं कहता हूं कि उन्हें छोड़ दो तो उन्हें छोड़ने के लिए उनसे मेरी कोई बुराई नहीं है। कहता हूं, छोड़ दो, क्योंकि जब तक उन्हें पकड़े हो, तब तक अपने को पाना असंभव है। और जो अपने को नहीं पा सकता, वह आदमी कभी भी परमात्मा के मंदिर में प्रवेश का अधिकारी नहीं होता।
इसी संबंध में कुछ और मित्रों ने पूछा है कि मैं क्यों गांधी के खिलाफ कहता हूं कुछ?
मुझे गांधी के खिलाफ कहने से क्या प्रयोजन है? गांधी जैसे आदमी हजारों वर्षों तक जमीन तपश्चर्या करती है, तब पैदा होते हैं। गांधी से मुझे क्या प्रयोजन? लेकिन आप गांधी को पकड़ने की दौड़ में पड़ गए हैं, इसलिए गांधी के खिलाफ भी कहता हूं, राम के खिलाफ भी कहता हूं, बुद्ध के और महावीर

के खिलाफ भी कहता हूं। उनके खिलाफ नहीं, उनके प्रति भी मुझे कठोर होना पड़ता है। क्योंकि मुझे लगता है कि अब एक नई मूर्ति बन रही है और उसको लोगों ने पकड़ना शुरू कर दिया। पुरानी मूर्तियों से छुटकारा नहीं हो पाता और नई मूर्तियां निर्मित हो जाती हैं और आदमी की गुलामी जारी रहती है! मालिक बदल जाते हैं, गुलामी कायम रहती है!
कोई राम से मुक्त हो तो बुद्ध को पकड़ लेता है! बुद्ध से मुक्त हो तो क्राइस्ट को पकड़ लेता है! क्राइस्ट से छुटकारा हो तो मोहम्मद को पकड़ लेता है! पहले दूसरे को पकड़ लेता है, तब एक को छोड़ता है। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि सबको छोड़ दे और अपने पैरों पर खड़ा हो जाए।
जो आदमी सबको छोड़ कर, अपने पैरों पर खड़ा हो पाता है, वह भगवान का प्यारा हो जाता है। क्योंकि भगवान उसे चाहता है, जो किसी को पकड़े हुए नहीं है, जो अपने बल पर खड़ा हुआ है।
मैंने सुनी है एक कहानी।
एक फकीर था मुसलमान। वह रात सोया। रात उसने सपना देखा कि वह स्वर्ग में चला गया है। सपने में लोग स्वर्ग में ही जाते हैं। असलियत में तो नरक में चले जाएं, लेकिन सपने में कोई नरक में क्यों जाए? सपने में तो कम से कम स्वर्ग जाना चाहिए। सपने में वह स्वर्ग चला गया। और देखता है कि स्वर्ग के रास्ते पर बड़ी भीड़-भाड़ है, लाखों लोगों की भीड़ है। उसने पूछा कि बात क्या है आज?
तो किसी भीड़ के रास्ते चलते आदमी ने कहा कि भगवान का जन्म-दिन है। उसका जलसा मनाया जा रहा है। तो उसने कहा, बड़े सौभाग्य मेरे, भगवान के बहुत दिनों से दर्शन करने थे। यह मौका मिल गया। आज भगवान का जन्म-दिन है, अच्छे मौके पर मैं स्वर्ग आ गया। वह भी रास्ते के किनारे लाखों दर्शकों की भीड़ में खड़ा हो गया।
फिर एक घोड़े पर सवार, एक बहुत शानदार आदमी, उसके साथ लाखों लोग! वह झुक
कर लोगों से पूछता है, क्या जो घोड़े पर सवार हैं, ये ही भगवान हैं? तो किसी ने कहाः नहीं, ये भगवान नहीं है, ये हजरत मोहम्मद और उनके पीछे उनको मानने वाले लोग। वह भी जुलूस निकल गया।
फिर दूसरा जुलूस है और रथ पर सवार एक बहुत महिमाशाली व्यक्ति है। वह पूछता है, क्या यही भगवान हैं?
किसी ने कहाः नहीं ये भगवान नहीं, ये राम हैं और राम के मानने वाले लोग उनके पीछे हैं।
फिर वैसे ही कृष्ण भी निकलते हैं और उनके मानने वाले लोग! और क्राइस्ट
और बुद्ध और महावीर और जरथुस्त्र और कनफ्यूशियस और न मालूम कितने महिमाशाली लोग निकलते हैं और उनको मानने वाले लोग निकलते हैं। आधी रात बीत जाती है, फिर धीरे-धीरे रास्ता सन्नाटा हो जाता है। फिर वह आदमी सोचता है कि अभी तक भगवान नहीं निकले! वे कब निकलेंगे?
और जब सारे लोग जाने के करीब हो गए हैं, रास्ता उजड़ने लगा है, कोई रास्ते पर ध्यान नहीं दे रहा है, तब एक बूढ़े से घोड़े पर एक बूढ़ा सा आदमी अकेला, चला आ रहा है। उसके साथ कोई भी नहीं। वह हैरान होता है कि ये महाशय कौन हैं? जिनके साथ कोई भी नहीं! यह अपने आप ही घोड़े पर बैठ कर चले आ रहे हैं, आखिरी जाते हुए लोगों से वह पूछता है कि यह सज्जन कौन हैं--बिल्कुल अकेले! तो वह चलता हुआ आदमी कहता है कि हो न हो, यह भगवान होंगे। क्योंकि भगवान से अकेला और दुनिया में कोई भी नहीं। वह जाकर भगवान को ही पूछता है, उस घोड़े पर बैठे हुए बूढ़े आदमी से कि महाशय, आप भगवान हैं? मैं बहुत हैरान हुआ, मोहम्मद के साथ बहुत लोग थे, क्राइस्ट के साथ बहुत लोग थे, राम के साथ बहुत लोग थे, सबके साथ बहुत लोग थे, आपके साथ कोई भी नहीं!
भगवान की आंखों से आंसू गिरने लगे और भगवान ने कहा, सारे लोग उन्हीं
के बीच बंट गए हैं, कोई बचा ही नहीं, जो मेरे साथ हो सके। कोई राम के साथ है, कोई कृष्ण के साथ, मेरे साथ तो कोई भी नहीं। और मेरे साथ वही हो सकता है, जो किसी के साथ न हो, मैं अकेला ही हूं।
घबड़ाहट में उस फकीर की नींद खुल गई। नींद खुल गई तो पाया, वह जमीन पर अपने झोपड़े में है। वह पास-पड़ोस में जाकर पूछने लगा कि मैंने एक बहुत ही

दुखद सपना देखा है, बिल्कुल झूठा सपना देखा है। मैंने यह देखा कि भगवान अकेला है। यह कैसे हो सकता है?
वह फकीर मुझे भी मिला और मैंने उससे कहा कि तुमने सच्चा ही सपनो देखा है। भगवान से ज्यादा अकेला कोई भी नहीं। क्योंकि जो हिंदू है, वह भगवान के साथ नहीं हो सकता। जो मुसलमान है, वह भगवान के साथ नहीं हो सकता। जो जैन है, वह भगवान के साथ नहीं हो सकता। जो कोई भी नहीं है, जिसका कोई विशेषण नहीं है, जो किसी का अनुयायी नहीं है, जो किसी का शिष्य नहीं, जो बिल्कुल अकेला है।
जो बिल्कुल नितांत अकेला है, वही केवल उस नितांत अकेले से जुड़ सकता है, जो भगवान है।
अकेले में, तनहाई में, लोनलीनेस में, बिल्कुल अकेले में वह द्वार खुलता है, जो भगवान से जोड़ता है।
भीड़-भाड़ से भगवान का कोई संबंध नहीं। जब हम हिंदू होते हैं, तब हम एक भीड़ के हिस्से होते हैं। जब हम मुसलमान होते हैं, तब हम दूसरी भीड़ के हिस्से होते हैं। जब हम राम के पीछे चलते हैं, तब हम अपनी ही कल्पना के पीछे चलते हैं। और जब हम बुद्ध के पीछे चलते हैं, तब भी हम अपनी ही कल्पना के पीछे चलते हैं। सत्य से इसका कोई संबंध नहीं है।
जब मैं कहता हूं छोड़ दें इन्हें, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि राम आदमी काम के नहीं। बहुत काम के हैं, यही तो खतरा है, इसीसे तो पकड़ पैदा हो जाती है। जब मैं कहता हूं, छोड़ दें इन्हें, तो मेरा मतलब यह है कि हाथ खाली चाहिए।
जब तक हम किसी को पकड़े हुए हैं, तब तक हाथ भरे हुए हैं। और भरे हुए हाथ परमात्मा के चरणों की तरफ नहीं बढ़ सकते। वहां खाली हाथ चाहिए, जिन हाथों में कोई भी न हो। और जब हाथ बिल्कुल खाली होते हैं, तब परमात्मा का हाथ उपलब्ध होता है।
एक और छोटी सी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूं।
मैंने सुना है, कृष्ण एक दिन भोजन करने बैठे हैं और रुक्मणी उनकी थाली
पर पंखा झलती है। एक-दो कौर ही उन्होंने खाए हैं और फिर थाली को सरका कर भागे हैं, एकदम दरवाजे की तरफ! रुक्मणी ने कहाः आप पागल हो गए हैं! आधा खाना खाकर कहां भागते हैं?
लेकिन कृष्ण ने उत्तर भी नहीं दिया, वह तो भागते हुए द्वार पर चले गए। फिर द्वार पर ठिठक कर खड़े हो गए! फिर चुपचाप उदास वापस लौट कर, बैठ कर भोजन करने लगे!
रुक्मणी ने कहाः बहुत मुश्किल में डाल दिया मुझे। क्या ऐसी जरूरत आ
गई थी कि इतनी तेजी से भागे? कौन सी दुर्घटना घट गई थी? कहां आग लगी? और फिर बिना आग को बुझाए, दरवाजे से वापस भी लौट आए, क्या था? क्या हो गया था आपको? कृष्ण ने कहाः सचमुच ही दुर्घटना हो गई थी। एक मेरा प्यारा, एक राजधानी से गुजर रहा है, एक फकीर, जिसका मेरे सिवाय और कोई भी नहीं, जिसका मेरे सिवाय और कोई भी नहीं। ऐसे मेरा एक प्यारा एक रास्ते से गुजर रहा है। कुछ लोग उसे पत्थर मार रहे हैं। उसके माथे से खून की धाराएं बह रही हैं। भीड़ उसे घेरे हुई खड़ी है। बहती हुई खून की धाराओं में भी चुपचाप खड़ा हंस रहा है। मेरी जरूरत पड़ गई थी कि मैं जाऊं, इसलिए मैं भागा।
रुक्मणी ने कहाः फिर आप द्वार से वापस कैसे लौट आए!
कृष्ण ने कहाः द्वार पर जब पहुंचा, फिर मेरी जरूरत न रह गई। उस फकीर ने अपने हाथ में पत्थर उठा लिया। अब वह खुद ही उत्तर दे रहा है। अब मेरी कोई जरूरत नहीं। जब तक वह बेसहारा था, जब तक उसका कोई भी न था, जब तक वह बिल्कुल अकेला था, तब तक मेरी जरूरत थी, तब तक उसके पूरे प्राण मुझे चुंबक की तरह खींच रहे थे। अब वह बेसहारा नहीं है, अब उसके हाथ में पत्थर है। उसने पत्थर का सहारा खोज लिया, अब उसके हाथ भरे हुए हैं। अब वह कमजोर नहीं है। अब उसके पास अपनी ताकत है, अब वह लड़ रहा है, अब मेरी कोई भी जरूरत नहीं है।
यह कहानी पता नहीं सच हो या झूठ। इसके सच और झूठ होने से कोई प्रयोजन
भी नहीं। लेकिन एक बात मैं जानता हूं और वह बात मैं आपसे कहना चाहता हूं। जब तक आपके हाथ भरे हैं, जब तक आपका मन भरा है, जब तक आप कोई सहारा पकड़े हुए हैं, तब तक परमात्मा का सहारा उपलब्ध नहीं होगा। उसका सहारा उसी क्षण

उपलब्ध होता है, जब आदमी परिपूर्ण बेसहारा हो जाता है। टोटल हेल्पलेस, जब पूरी तरह बेसहारा, होता है, तब उसका सहारा उपलब्ध होता है। लेकिन हम कोई न कोई सहारा पकड़ लेते हैं और वही सहारा बाधा बन जाता है।
तो जब मैं कहता हूं, छोड़ दें सबको, तो मेरा मतलब है कि बिल्कुल बेसहारा
हो जाएं, सब भांति बेसहारा हो जाएं। जिस दिन आदमी सब भांति बेसहारा हो जाता है, एक चुंबक बन जाता है और परमात्मा की सारी शक्तियां उसकी तरफ खिंचनी शुरू हो जाती हैं। लेकिन उस बेसहारा होने के लिए सारे शास्त्र, सारे गुरु, सारे नेता, वे सब जिनको हम पकड़ सकते हैं और सहारा बना सकते हैं, उन सबसे मुक्त हो जाना जरूरी है।
लेकिन मेरी बात को गलत मत समझ लेना। मेरी बात को रोज-रोज गलत समझा जाता है। जब मैं कहता हूं कि छोड़ दें गांधी को तो लोग समझते हैं कि मैं गांधी का दुश्मन हूं!
मैं आपसे छोड़ने को कह रहा हूं और गांधी को नहीं, किसी को भी छोड़ने को
कह रहा हूं। अगर मुझको भी कोई पकड़े हो, तो मैं कहूंगा छोड़ दें, मुझे मत पकड़ना। तो वह फिर मेरा ही दुश्मन हो गया! मैं छोड़ने को कह रहा हूं, मैं कह रहा हूं, अनकलिंगिंग, मुट्ठी खाली चाहिए, कोई पकड़ नहीं चाहिए।
अदभुत है वह घड़ी, जब एक आदमी सब छोड़ कर खड़ा हो जाता है। तब उसके जीवन में कैसी घटना घटती है, उसका हमें कोई भी पता नहीं। तब उसके जीवन में पहली बार परमात्मा का आगमन होता है। तब पहली बार वे पगध्वनियां सुनाई पड़ती हैं, जो सत्य की हैं। इसीलिए कहता हूं, छोड़ दें।

एक और मित्र ने पूछा है कि अगर सत्य शब्द से नहीं कहा जा सकता और शास्त्र में नहीं लिखा जा सकता, तो फिर क्या रास्ता है उसे कहने का?

उसे कहने का कोई भी रास्ता नहीं, उसे कहने की कोई जरूरत भी नहीं। उसे जानने की जरूरत है, कहने की नहीं। और जानने से भी ज्यादा वही हो जाने की जरूरत है। कहने का सवाल नहीं है कि हम उसे कहें। उसे जानने और अनुभव करने का सवाल है। कहने का क्या अर्थ?
एक फकीर था, शेख फरीद। वह तीर्थयात्रा पर निकला हुआ था। काशी के करीब
से गुजरता था तो काशी के पास ही कबीर का आश्रम था, मगहर में। फरीद के साथियों ने कहा कि कितना अच्छा न होगा कि दो दिन के लिए कबीर के आश्रम पर हम रुक जाएं। आप दोनों की बातचीत होगी, हम आनंदित होंगे, हम सुनकर प्रफुल्लित होंगे। हमारे जीवन में तो अमृत की वर्षा हो जाएगी।
फरीद ने कहाः कहते हो तो रुक जाएंगे, लेकिन बातचीत! बातचीत शायद ही हो।
लेकिन मित्रों ने कहाः कबीर से आप बात नहीं करिएगा?
फरीद ने कहाः बात कबीर से करने की कोई जरूरत नहीं है। कबीर भी जानते हैं और मैं भी जानता हूं, बात क्या करेंगे?
कबीर के साथियों ने भी कबीर से कहा कि सुना है, फरीद निकलता है पास से, क्या अच्छा न हो कि हम उसे निमंत्रित करें? और वह दो दिन हमारे पास रहे। आप दोनों की बातें होंगी तो हमारे तो भाग्य खुल जाएंगे। हम कुछ पकड़ लेंगे उस बातचीत से।
कबीर ने कहाः बातचीत बहुत मुश्किल है! जो बोलेगा, वह मूर्ख सिद्ध होगा। फरीद को कहो तो बुला लो जरूर--बैठेंगे, हंसेंगे, गले मिलेंगे; कहोगे तो रो लेंगे, बोलेंगे नहीं। क्योंकि जो बोलेगा, वही नासमझ सिद्ध होगा। लेकिन लोगों ने कहाः बोलेंगे क्यों नहीं? कबीर ने कहा कि तुम नहीं मानते हो तो बुला लो।
फरीद बुला लिया गया। कबीर गांव के बाहर उसके स्वागत को गया। दोनों गले मिले, देर तक गले मिले। आंखों से आंसू बहने लगे। दोनों मिल कर बैठ गए झाड़ के नीचे। दोनों के शिष्य घेर कर बैठे हैं कि शायद कुछ बात हो। लेकिन बात न हुई! एक दिन बीत गया और दूसरा दिन भी बीतने लगा, और फिर बिदा का वक्त भी आ गया! और सारे शिष्य घबरा गए कि यह क्या मामला है, बोलते क्यों नहीं हो? लेकिन वे दोनों हंसते थे और बोलते नहीं थे। फिर बिदाई भी हो गई।

जैसे ही बिदाई हुई, कबीर के शिष्यों ने कबीर को पकड़ लिया और फरीद के शिष्यों ने फरीद को! कि यह क्या मामला है, बोले क्यों नहीं?
कबीर ने कहाः बोलते क्या? जो जानते हैं, वह बोला नहीं जा सकता। और दूसरे जानने वाले के सामने बोलते क्या? कल तुम मुझे बुद्धू बनाना चाहते थे।
और फरीद ने कहा कि जो बोलता, वह मूर्ख सिद्ध होता।
लेकिन ये दोनों आदमी क्यों नहीं बोले? सत्य जाना जा सकता है, बोला नहीं जा सकता।
लेकिन फरीद बोलता था, दूसरों के बीच। और कबीर भी बोलते थे। फिर वे क्या बोलते थे, अगर सत्य नहीं बोला जा सकता? वे सिर्फ इतना ही बोलते थे कि वे आपको भी यह कह सकें कि सत्य नहीं बोला जा सकता, सत्य नहीं दिया जा सकता। सत्य नहीं लिया जा सकता। वे आपको भी यह नकारात्मक ख्याल दे सकें कि सत्य मिल सकता है, खोजा जा सकता है, लेकिन किसी से पाया नहीं जा सकता।
अगर इतना भी ख्याल बोलने से आ सके, अगर इतनी भी बात स्मरण में आ जाए कि कोई एक ऐसी व्यक्तिगत खोज भी है इंडिविजुअल, जिसमें दूसरा सहयोगी और साथी नहीं हो सकता। अगर इतना भी ख्याल आ जाए कि एक ऐसी यात्रा भी है, जो अकेले ही करनी पड़ती है, तो शायद है उस यात्रा पर निकल जाए, वह इशारा पकड़ में आ जाए। लेकिन हम तो उन पागलों की तरह हैं कि अगर मैं अपनी अंगुली उठा कर बताऊं कि वह रहा चांद आकाश में, तो आप मेरी अंगुली पकड़ लेंगे और कहेंगे यह है चांद! मैं चिल्ला कर कहूं कि अगुंली छोड़ दो मेरी; चांद वहां है, जहां अंगुली नहीं है। मैं बता रहा हूं सिर्फ अंगुली से उस तरफ--उस तरफ देखो। और आप कहो कि बड़ी प्यारी अंगुली है, ठीक है, हम समझ गए कि यहीं चांद है, लाइए आपकी अंगुली की पूजा करूं!
जापान में एक मंदिर है, जहां एक अंगुली बनी हुई है मंदिर की मूर्ति की जगह! और बुद्ध का एक वचन नीचे लिखा हुआ है कि मैं तुम्हें अंगुली दिखाता हूं कि तुम चांद को देख लो और तुम मेरी अंगुली की पकड़ कर पूजा करते हो! हम सब अंगुलियों की पूजा कर रहे हैं!
शब्द, शास्त्र और सब इशारे उस तरफ हैं, जहां न शास्त्र रह जाएगा, न शब्द रह जाएगा, न इशारे रह जाएंगे। लेकिन हम उन लोगों की तरह हैं, जैसे रास्ते के किनारे पत्थर लगा होता है और पत्थर पर तीर का निशान लगा होता है और लिखा होता है कि जूनागढ़ पचास मील। और कई समझदार उसी पत्थर को छाती से लगाकर बैठे हैं कि पहुंच गए जूनागढ़--लिखा है यहां कि जूनागढ़! यही पत्थर है जूनागढ़! उस पत्थर पर लिखा है कि जूनागढ़ बहुत दूर है।
इस पत्थर को पकड़ कर बैठ गए तो कभी नहीं पहुंचोगे। इस पत्थर को छोड़ो और आगे बढ़ जाओ और जहां तक पत्थर लगे हैं, छोड़ते ही चले जाना। और जहां पत्थर आ जाए--जिस पर लिखा हो जीरो जूनागढ़। समझ लेना कि आ गए वहां, जहां लिखा है जीरो, शून्य जूनागढ़। है एक पत्थर जूनागढ़ में कहीं होगा, जहां लिखा होगा, शून्य जूनागढ़। वह शून्य वाला पत्थर सार्थक है।
अगर कोई किताब मिल जाए, जिसमें लिखा हो शून्य, तो वह किताब धर्मशास्त्र हो सकती है। जहां तक शब्द है-वहां तक आगे, और आगे। और आगे छोड़ते जाना है, छोड़ते जाना है वहां पहुंच जाना है, जहां फिर और आगे नहीं होता। लेकिन वहां शून्य है। सारे शब्दों का इशारा शून्य की तरफ है।
शून्य का अर्थ हैः ध्यान; शून्य का अर्थ हैः समाधि।
शून्य का अर्थ है, सब छोड़ कर निपट ना-कुछ हो जाना। उस ना कुछ से सब-कुछ मिलता है।
शून्य है द्वार पूर्ण का।
शब्द--शब्द नहीं हैं द्वार। शब्द है दीवाल, शून्य है द्वार। जो शब्द
पर अटक जाते हैं, वे उसी दीवाल से सिर टकराते रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं। जो शून्य के द्वार से प्रवेश करते हैं, वे प्रवेश कर जाते हैं।
कभी आपने देखा? आपके घर का दरवाजा शून्य है। कभी आपने यह ख्याल किया, दीवाल भरी हुई है, दरवाजा खाली है। दरवाजा एक, एंप्टीनेस है। कभी आपने ख्याल किया कि घर में जो दरवाजे हैं, उन दरवाजों में कुछ भी नहीं है। दरवाजे का मतलब क्या होता है? जहां कुछ भी नहीं है, जहां दीवाल नहीं है, पत्थर नहीं है, कुछ भी नहीं है, खाली जगह है। उस दरवाजे से आप निकलते

हैं, जहां खाली जगह है। कभी दीवाल से नहीं निकलते, जहां भरा हुआ है सब-कुछ। वहां से निकलिएगा तो सिर फूट जाएगा, निकल नहीं पाएंगे, क्योंकि दरवाजे से निकलते हैं। दरवाजे का क्या मतलब होता है दरवाजे का मतलब--एंप्टीनेस, खाली जगह। मकान में सबसे कीमती चीज मालूम है, क्या है? दरवाजा है, जहां कुछ भी नहीं है। अगर किसी मकान में दरवाजा न हो तो मकान बेकार हो गया।
बर्तन में पानी भरते हैं आप, शायद आप सोचते होंगे कि बर्तन की जो दीवाल है, उसमें पानी भरते हैं तो गलती में हैं। भीतर जो खाली जगह है, उसमें पानी भरते हैं। बर्तन क्या है? दीवाल की खाली जगह। वह जो बर्तन की दीवाल के भीतर खाली जगह है, मटके के भीतर, उसमें पानी भरता है। वह खाली जगह में, वह खाली जगह ही असली मटका है। वह जो दीवाल है, वह सिर्फ खाली जगह को घेरती है। वह दीवार मटका नहीं है। बाजार से जो चार आने में आप खरीद लाते हैं, वह चार आने में आप दीवाल खरीद के लाते हैं? लेकिन आपको पता नहीं, असल में आप भीतर की खाली जगह खरीद कर आ रहे हैं। वह खाली जगह में पानी भरिए। उस मटके में जो खाली जगह है, वही है असली चीज। मकान में जो दरवाजा है, वही है असली चीज।
और मन के भीतर भी जो शून्य है, वही है असली चीज।
जहां मन में शब्द हैं, वहीं दीवाल है और जहां शून्य है, वहीं द्वार।
और हम तो मन को शब्दों से भर लेते हैं और जितने ज्यादा शब्द किसी आदमी
के पास हों, हम कहते हैं, यह उतना ही बड़ा ज्ञानी है! उतना ही बड़ा दीन-हीन है वह आदमी। उसके पास सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं है। शब्द बहुत मन में हों तो हम कहते हैं, बहुत जानता है यह आदमी!
लेकिन जानते हैं वे, जिनके भीतर शब्द की दीवार नहीं, शून्य का द्वार है। शब्द की दीवार नहीं, शून्य का द्वार है। शब्द को छोड़ कर जानता है आदमी, शब्दों को पकड़ कर नहीं। यह उलटी बात मालूम पड़ती है। लेकिन यही है सत्य। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ और कुछ लोगों ने बुद्ध से पूछा कि आपको क्या मिल गया ज्ञान में? तो बुद्ध ने कहाः मिला कुछ भी नहीं, जो सदा से मिला ही हुआ था, उसका भर पता चल गया। बुद्ध से उन्होंने पूछा कि क्या करके मिल गया? बुद्ध ने कहाः जब तक कुछ करता रहा, तब तक नहीं मिला। जब सब करना छोड़ दिया, तब मिल गया। लोग कहने लगे, आप बड़ी उलटी बातें कहते हैं!
बुद्ध ने कहाः जब तक कुछ करने की कोशिश करता था, तब तक मन में अशांति रही। क्योंकि करने से भी अशांति पैदा होती है। जब सब करना छोड़ दिया, करना ही छोड़ दिया तो एकदम मन शांत हो गया और उसका पता चल गया, जो भीतर था।
शब्द भी अशांति है। जब तक शब्द भीतर घूमता है, तब तक चित्त अशांत रहेगा। जब सब शब्द शांत हो जाते हैं, भीतर कोई शब्द नहीं गूंजता; कोई गीता नहीं बोली जाती भीतर, कोई कुरान नहीं उठता; कोई महावीर, कोई बुद्ध की वाणी नहीं सुनाई पड़ती; सब खो जाता है, सब मौन हो जाता है।
उस क्षण में क्या होता है? उस क्षण में उसका पता चलता है, जो भीतर है,
जो सदा से था, जिसे हमने कभी खोया नहीं, जिसे हम चाहें तो भी खो नहीं सकते हैं। वही है सत्य, जो न खोया जा सकता है, न कभी खोया गया है, जो हमारा वास्तविक होना है। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं चलता, क्योंकि शब्दों की पर्त हमने चारों तरफ इकट्ठी कर रखी हैं!
कभी प्याज को छील कर देखा है? जैसे प्याज पर्त-पर्त छीलते चले जाएं--
एक प्याज की पर्त निकलती है तो दूसरी आ जाती है, वह निकलती है तो तीसरी आ जाती है--छीलते ही चले जाएं। ऐसे ही मन के भीतर शब्दों की पर्तें हैं। हजार हजार पर्तें हैं, जन्मों-जन्मों की पर्तें हैं। एक-एक पर्त को छीलते चले जाएं, निकालते चले जाएं; जब तक पर्तें निकलती हों, तब तक उखाड़ते चले जाएं। फिर एक वक्त आएगा कि सब पर्तें निकल जाएंगी। फिर क्या बचेगा?
भीतर शून्य बच रहेगा। कुछ भी नहीं बचेगा। और जिस दिन सब पर्तें चली जाएंगी और जो शेष रह जाएगा वही, जो शेष रह जाता है; दी रिमेनिंग, वह जो पीछे शेष रह जाता है--वही सत्य है। जिसको आप निकाल कर फेंक नहीं सकते। बस, वही सत्य है, जिसे हटाया नहीं जा सकता, जो सबके बाद में भी शेष रह जाता है। सब हट जाए फिर भी शेष रह जाता है।
एक मकान में से हम सामान को निकालना शुरू कर दें, सारा फर्नीचर बाहर
कर दें। दरवाजे से फोटुएं निकाल लें, कैलेंडर निकाल लें, खिड़कियों से

सामान निकाल लें, बर्तन निकाल लें, सब चीजें बाहर निकाल दें। जब सब चीजें निकल जाएं, तब भी कुछ पीछे रह जाता है। तब पीछे क्या रह जाता है? खालीपन पीछे रह जाता है। वह खालीपन ही मकान है।
पीछे कुछ रह जाता है? खाली मकान पीछे रह जाता है। वह खालीपन ही असली मकान है। और हम उस खालीपन में चीजें भरते चले जाएं और, तो हम इतनी चीजें भर दें कि भीतर जाना मुश्किल हो जाए, तो फिर मकान तो है, लेकिन भरा हुआ मकान, जिसमें प्रवेश भी नहीं पाया जा सकता।
मन भी एक मकान है, जिस मकान में हम शब्दों को भरते चले जाते हैं। शब्द इतने भर जाते हैं कि फिर मन के भीतर प्रवेश मुश्किल हो जाता है। कभी अपने भीतर गए हैं? सिवाय शब्दों के वहां कुछ भी नहीं मिलेगा! भीतर जाएंगे और शब्द ही शब्द टकराते मिलेंगे! जैसे बाजार में चले जाएं और आदमी और आदमी मिलेंगे, वैसे ही अपने भीतर जाएं तो सिवाय शब्दों के कुछ भी नहीं मिलेगा। लेकिन इन शब्दों की भीड़ के कारण ही भीतर प्रवेश नहीं हो पाता।
जब इन सारे शब्दों को कोई बाहर फेंक देता है, तब भी आप तो भीतर रह जाएंगे। आप तो शब्द नहीं हैं। आप तो कुछ और हैं। शब्द बाहर निकल जाएंगे, फिर भी आप तो बचेंगे। जब सारे शब्द फिंक जाएंगे, तब जो बच जाता है, उसका नाम ही आत्मा है। और जो उसे जान लेता है, वह सत्य को जान लेता है। और जो अपने भीतर जान लेता है, वह सबके भीतर जान लेता है। और जिसे एक बार उसका दर्शन हो जाता है, उसे फिर घड़ी-घड़ी, सब जगह उसका ही दर्शन होने लगता है।
इसलिए मैं कहता हूं, शब्द से नहीं, शास्त्र से नहीं, शून्य से दरवाजा है। शून्य से प्रवेश करने की जरूरत है। इसलिए कहता हूं, छोड़ दें सब। छोड़ने पर जोर इसलिए है कि पीछे जो शेष रह जाएगा, जिसको छोड़ा नहीं जा सकता, जिसको छोड़ने का कोई उपाय नहीं है, वही आप हैं। और जिसको छोड़ा जा सकता है, वह आप नहीं। जिसको छोड़ा जा सकता है, वह मैं कैसे हो सकता हूं? जो भी मुझसे छीना जा सकता है, वह मैं नहीं हो सकता। जो मुझमें जोड़ा जा सकता है, वह मैं नहीं हो सकता। जो मुझमें न जोड़ा जा सकता है, न मुझसे अलग किया जा सकता है, वही मैं हूं। और उस होने का नाम ही सत्य है।
इसलिए इतना जोर देता हूं कि छोड़ दें सबको, छोड़ दें सारे शास्त्रों को। शास्त्र से दुश्मनी नहीं है, शास्त्र बेचारे से क्या दुश्मनी हो सकती है? किताबों से क्या दुश्मनी हो सकती है? कोई दिमाग खराब है मेरा कि किताबों से दुश्मनी करूं? किताबों से क्या दुश्मनी हो सकती है? व्यक्तियों से क्या दुश्मनी हो सकती है? दुश्मनी है एक बात से, वह जो आदमी अपने को भर लेता है, उससे दुश्मनी है। क्योंकि भरा हुआ आदमी, उसे जानने से वंचित रह जाता है, जो वह है। जो उसका वास्तविक होना है, उससे वह अपरिचित रह जाता है। जापान में एक फकीर था, बोकोजु। उस फकीर से मिलने एक युनिवर्सिटी का प्रोफेसर आया। वह युनिवर्सिटी का प्रोफेसर बहुत बड़ा ज्ञानी था। बहुत शब्द थे उसके पास। बहुत शास्त्र उसने जाने थे। वह फकीर बोकोजु के झोपड़े पर गया। थका-मांदा, रास्ते की धूप में उसके चेहरे पर पसीना बह रहा है। वह गया भीतर। उसने बोकोजु को नमस्कार किया और माथे का पसीना पोंछा और कहा कि मैं यह जानने आया हूं कि सत्य क्या है?
बोकोजु ने कहा, सत्य क्या है, यह जानने यहां आने की क्या जरूरत थी? अगर सत्य होगा, तो तुम्हारे घर में भी होगा और नहीं होगा तो कहीं भी नहीं होगा। यहां किसलिए आए हो? सत्य का मैंने कोई ठेका ले रखा है? सत्य अगर होगा तो वहां भी होगा, जहां से तुम आ रहे हो। और अगर वहां नहीं है और वहां तुम्हें दिखाई नहीं पड़ा तो यहां तुम्हें कैसे दिखाई पड़ सकता है?
एक अंधा आदमी अपने घर से बाहर निकले और हजार मील चल कर किसी दूसरे के
घर में जाए और कहे कि रोशनी कहां है? तो वह आदमी कहेगा, पागल, अगर आंखें थीं तो रोशनी वहां भी थी, जहां से तुम आ रहे हो! अगर आंखें नहीं हैं तो तुम दुनिया भर में घूमते रहो, रोशनी कहीं भी नहीं है। रोशनी वहां होती है, जहां आंखें होती हैं और जहां आंखें नहीं होती, वहां रोशनी नहीं होती, तुम कहीं भी चले जाओ।
उस फकीर ने कहाः कि तुम्हें सत्य दिखाई पड़ता है? अगर दिखाई पड़ता होता
तो वहीं दिखाई पड़ जाता, यहां आने की क्या जरूरत थी? तुम यहां तक आए, इससे पता चलता है कि तुम अंधे आदमी हो, तुम्हें सत्य दिखाई नहीं पड़ता। और इसलिए

मैं भी क्या कर सकता हूं? एक ही बात कह सकता हूं कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे ज्ञान ने तुम्हें अंधा बना दिया हो? तुम बहुत जानते हो, कहीं यही खतरा तो नहीं है? क्योंकि बहुत जानने वाले लोग बहुत खतरनाक होते हैं। जिन्हें भी यह ख्याल पैदा हो जाता है कि हम बहुत जानते हैं, वे बहुत खतरनाक हो जाते हैं।
क्योंकि बहुत जानने से बड़ा अज्ञान दुनिया में दूसरा नहीं है। क्योंकि जिन्हें ज्ञान पैदा होता है, वह तो उन लोगों को पैदा होता है, जो कहते हैं कि हम जानते ही नहीं, जानने का भ्रम ही छोड़ देते हैं।
बोकोजु ने कहाः कि मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि तेरी खोपड़ी शब्दों से बहुत भर गई है। और इसलिए तुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। फिर भी थोड़ी देर रुक, मैं थोड़ी चाय बना लाऊं, थका-मांदा मालूम पड़ता है तू, थोड़ी चाय पी ले, थोड़ा विश्राम कर ले, फिर कुछ बात करेंगे। और यह भी हो सकता है कि चाय पीने में बात भी हो जाए और यह भी हो सकता है कि तूने जो पूछा है, वह चाय पीने में उसका उत्तर भी मिल जाए।
उस प्रोफेसर ने कहाः चाय पीने में? और सत्य का उत्तर! आप कह क्या रहे हैं? मैं किस पागल के पास आ गया? मैंने व्यर्थ इस धूप में इतनी यात्रा की। उस फकीर ने कहाः ठहर, इतनी जल्दी मत कर, मैं थोड़ी चाय बना लाऊं।
थका प्रोफेसर था, बैठा रहा। लेकिन ख्याल तो उसका खत्म हो गया कि इस आदमी से कुछ जानने को मिल सकता है। क्योंकि जो आदमी कहता है कि चाय पीने से सत्य का पता चल जाएगा, उस आदमी से क्या मिल सकता है?
फकीर चाय बना कर ले आया। उसने प्लेट और कप, प्याली सम्हाल दिए प्रोफेसर के हाथ में और केटली से चाय ढाली। प्याली भर गई, लेकिन वह फकीर चाय ढालता चला गया! फिर नीचे का बर्तन भी भर गया, वह फकीर चाय ढालता ही चला गया! फिर चाय गिरने के करीब हो गई!
तब वह प्रोफेसर चिल्लाया कि अब रुकिए भी, अब एक बूंद भर भी जगह मेरी प्याली में नहीं है।
उस फकीर ने कहा कि तुझे दिखाई पड़ता है कि बूंद भर भी जगह तेरी प्याली में नहीं है? तुझे दिखाई पड़ता है! और तुझे यह भी दिखाई पड़ता है कि जिस प्याली में बूंद भर भी जगह नहीं है, अब उसमें चाय भरने से गिर जाने का डर है? लेकिन तुझे कभी अपनी खोपड़ी में जगह दिखाई पड़ी? वहां भी सब शब्दों से भर गया है, जगह बिल्कुल नहीं है। और अब तेरे पागल होने का वक्त करीब आ रहा है, अब वे शब्द जो तेरे भीतर भर गए हैं, वे बाहर गिरने शुरू हो जाएंगे।
आदमी पागल कब हो जाता है, पता है आपको? जब विचार इतने खोपड़ी में भर जाते हैं कि उनको सम्हाल नहीं पाता और वे गिरने लगते हैं। रास्ते पर चला जा रहा है और बोलने लगता है! जो नहीं सुनना चाहता, उसको पकड़ कर बोलने लगता है! रात सोता है और बोलता है! अकेले में बैठता है और बोलता है। जब शब्द इतने भर जाते हैं कि बाहर झड़ने लगते हैं तो आदमी को हम कहते हैं, पागल हो गया।
ऐसे थोड़े-बहुत पागल हम सभी होते हैं। क्योंकि अकेले बैठते हैं, तब भी अपने से बोलते ही रहते हैं। कुछ न कुछ जारी रहता है। भीतर खोपड़ी में काम चलता ही रहता है। वहां कभी विश्राम नहीं है। हम सब भी थोड़े-बहुत पागल है। पागल में और हममें कोई गुण का फर्क नहीं होता, सिर्फ मात्रा का फर्क होता है। थोड़ी मात्रा बढ़ जाए और हम भी पागल हो जाएं।
कभी अकेले कोने में बैठ जाएं, जाकर दस मिनट आंख बंद कर लेना। और दरवाजा लगा लेना भीतर से, ताला बंद कर लेना और एक कागज पर अपने मन में जो भी चलता हो, उसको लिखना। दस मिनट तक ईमानदारी से वही, जो चलता हो। तो दस मिनट के बाद अपनी पत्नी को या अपने पति को या अपने निकटतम मित्रों को भी वह कागज बताने की हिम्मत न होगी! क्योंकि वह कहेगा, यह तुमने लिखा? तुम्हारे भीतर चल रहा है यह! फिर चलो किसी डाक्टर के पास इसी वक्त, यह तुम्हारी खोपड़ी के भीतर यह बातें चलती हैं।
दस मिनट अपने ही भीतर जो चल रहा है, उसे कागज पर लिखना तो पता चल जाएगा
कि वहां भीतर शब्द पागल हो गए हैं, वहां रुग्ण शब्द घूम रहे हैं चारों तरफ। किसी तरह अपने को सम्हाल कर हम काम चला रहे हैं। हम सब पागल हैं--सम्हले

हुए पागल! अपने को सम्हाले हुए हैं और अपने पर कब्जा किए हुए हैं। वह जो भीतर है, अगर जोर से बाहर निकल आए।
किसी आदमी को शराब पिला दें और फिर देखें कि वह आदमी क्या बातें करना शुरू कर देता है! अभी जब तक शराब नहीं पी थी, तब तक राम-भजन कर रहा था, शराब पीते ही गाली बकना शुरू कर देता है! शराब क्या भजन को गाली में बदल सकती है? ऐसी कोई कीमिया शराब में है? शराब में कोई ऐसी केमिस्ट्री है कि भजन को गाली बना दे?
शराब कुछ भी नहीं कर सकती। शराब सिर्फ एक काम कर सकती है कि जब तक वह आदमी शराब नहीं पीए हुआ था, गालियां उसके भीतर चल रही थीं, भजन ऊपर से कर रहा था, अपने को सम्हाले हुए! शराब ने वह सम्हालना खत्म कर दिया, हाथ-पैर ढीले हो गए और वह ताकत नहीं रही सम्हालने की। तो जो असलियत थी, भीतर से बाहर आनी शुरू हो गई।
सज्जन आदमी भी भीतर सज्जन नहीं है। वह भजन तो ऊपर से जोर-जोर से कह रहा है, भीतर कुछ और कह रहा है, भीतर कुछ और चल रहा है! भीतर एक पागल मस्तिष्क दौड़ रहा है--यह जो शब्दों का पागलपन है।
उस फकीर ने कहा कि तुम्हारी खोपड़ी में इतने शब्द भरे हैं कि अब सत्य
को जाने के लिए जगह भी है? सत्य को भी प्रवेश के लिए जगह चाहिए। प्याली में तुम्हें दिखाई पड़ता है कि अब जगह भर गई, लेकिन अपने मन में कभी देखा कि वहां जगह कब की भर चुकी है, कई जन्मों पहले भर चुकी है और अब ओवर क्राउडिंग है! अब सब ऊपर से भरता चला जा रहा है, अब जगह वहां नहीं है। अब सब अतिरिक्त वहां भरता चला जा रहा है। वह अतिरिक्त जितना भरता जा रहा है, उतना ही आदमी रुग्ण, अस्वस्थ होता चला जा रहा है। उतना ही आदमी का सत्य से संबंध टूटता चला जा रहा है।
अगर सत्य से संबंधित होना है तो यह भीतर की भीड़ को बाहर कर देना जरूरी है। यह भीतर शब्दों का जो जमघट, जमाव है; उससे छूट जाना मुक्त हो जाना जरूरी है। लेकिन हम तो कहते हैं कि शब्द ज्ञान है। तो फिर कैसे इससे छूटेंगे?
जब तक हम शब्द को ज्ञान समझते हैं, तब तक हम शब्द से नहीं छूट सकते। जिस दिन हम समझेंगे, समझेंगे कि शब्द ज्ञान नहीं है, बल्कि शब्द के कारण ही हम अपने अज्ञान को छिपाए हुए बैठे हैं। शब्द झूठा ज्ञान है, शब्द सुडो नालेज है। शब्द ज्ञान नहीं है। जिस दिन हमें यह पता चलेगा, उस दिन हम शब्द को फेंक सकेंगे। और जिस दिन शब्द फिंक जाता है, भीतर एक क्रांति घटित हो जाती है, एक्सप्लोजन हो जाता है, एक नई दुनिया खुल जाती है, एक नया द्वार खुल जाता है। एक छोटी सी कहानी, उससे मैं समझाऊं।
एक बहुत पुराना साम्राज्य, उस साम्राज्य के बड़े वजीर की मृत्यु हो गई थी। उस राज्य का यह नियम था कि वह देश भर में जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी होता, उसी को वजीर बनाते थे। तो उन्होंने सारे देश में परीक्षाएं लीं और तीन आदमी चुने गए, जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान सिद्ध हुए थे। फिर उन तीनों को राजधानी बुलाया गया, अंतिम परीक्षा के लिए। और अंतिम परीक्षा में जो जीत जाएगा, वही राजा का बड़ा वजीर हो जाएगा।
वे तीनों राजधानी आए। वे तीनों चिंतित रह होंगे, पता नहीं क्या परीक्षा होगी? जैसा कि परीक्षार्थी चिंतित होते हैं। उन्होंने आकर, राजधानी में जो भी मिला, उससे पूछा कि कुछ पता है?
और मुश्किल हो गई। राजधानी में सभी को पता था कि क्या परीक्षा होगी। सारे गांव को मालूम था। सारे गांव ने कहा, परीक्षा! परीक्षा तो बहुत दिन पहले से तय है। राजा ने एक मकान बनाया है और मकान में एक कक्ष बनाया है। उस कक्ष पर एक ताला उसने लगाया है--जो ताला गणित की एक पहेली है। उस ताले की कोई चाबी नहीं है। उस ताले पर गणित के अंक लिखे हुए हैं। और जो उस गणित को हल कर लेगा, वह ताले को खोलने में समर्थ हो जाएगा। तुम तीनों को उस भवन में बंद किया जाने वाला है। जो सबसे पहले दरवाजे को खोल कर बाहर आएगा, वही राजा का वजीर हो जाएगा। वे तीनों घबरा गए होंगे!
एक उनमें से सीधा अपने निवास स्थान पर जाकर सो गया। उन दो मित्रों ने समझा कि उसने, दिखता है, कि परीक्षा देने का ख्याल छोड़ दिया। वे दोनों भागे बाजार की तरफ। रात भर का सवाल था, कल सुबह परीक्षा हो जाएगी। उन्हें न कभी

कोई तालों के संबंध में कोई जानकारी न थी। न तो वे चोर थे कि तालों के संबंध में जानते हों, न ही वे कोई तालों को सुधारने वाले कारीगर थे, न वे कोई इंजीनियर थे। और न वे कोई नेता थे, जो सभी चीजों के बाबत में जानते! वे कोई भी ना थे। वे बहुत परेशानी में पड़ गए कि हम तालों को कैसे खोलेंगे? उन्होंने जाकर दुकानदारों से पूछा, जो तालों के दुकानदार थे। उन्होंने गणित के विद्वानों से पूछा। उन्होंने इंजीनियरों से जाकर सलाह ली। उन्होंने बड़ी किताबें इकट्ठी कर लीं पहेलियों के ऊपर। वे रात भर किताबों को कंठस्थ करते रहे, सवाल हल करते रहे। जिंदगी का सवाल था, उन्होंने कहा, सोना उचित नहीं है। एक रात नहीं भी सोएं तो क्या हर्ज है? परीक्षार्थी सभी इसी तरह सोचते हैं एक रात नहीं सोएं तो क्या हर्जा है। लेकिन सुबह उनको पता चला कि बहुत हर्जा हो गया है। रात भर पढ़ने के कारण जो थोड़ा-बहुत वे जानते थे, वह भी गड़बड़ हो चुका था। सुबह अगर उनसे कोई पूछता कि दो और दो कितने होते हैं, तो वे चौंक कर खड़े हो जाते। एकदम से नहीं कह सकते थे कि चार होते हैं। क्योंकि दिमाग रात भर में अस्त-व्यस्त हो गया था। न मालूम कैसी-कैसी पहेलियां हल की थीं। यही तो होता है परीक्षार्थियों का। परीक्षा के बाहर जिन सवालों को वे हल कर सकते हैं, परीक्षा में हल नहीं कर पाते!
तीसरा मित्र जो रात भर सोया रहा था, सुबह होते ही उठ आया। हाथ-मुंह धोकर उन दोनों के साथ हो लिया। वे तीनों राजमहल पहुंचे। अफवाह सच थी। सम्राट ने उन्हें एक भवन में बंद कर दिया और कहा कि इस ताले को खोल कर जो बाहर आ जाएगा--इसकी कोई चाबी नहीं है, यह गणित की एक पहेली है। गणित के अंक ताले के ऊपर खुद हुऐ हैं, हल करने की कोशिश करो--जो बाहर निकल आएगा सबसे पहले, वही बुद्धिमान सिद्ध होगा और उसी को मैं वजीर बना दूंगा। मैं बाहर प्रतीक्षा करता हूं।
वे तीनों भीतर गए। जो आदमी रात भर सोया रहा था, वह फिर आंखें बंद करके
एक कोने में बैठ गया। उसके दो मित्रों ने कहाः इस पागल को क्या हो गया है! कहीं आंखें बंद करने से दुनिया के सवाल हल हुए हैं? शायद इसका दिमाग खराब हो गया है। वे दोनों मित्र जो होशियार थे, जो सोचते थे कि उनका दिमाग ठीक था, अपनी किताबें अपने कपड़ों के भीतर छिपा लाए थे। उन्होंने जल्दी से किताबें बाहर निकालीं और अपने सवाल हल करने फिर शुरू कर दिए। परीक्षार्थी ऐसा न समझें कि आजकल के परीक्षार्थी ही होशियार होते हैं। पहले जमाने में भी आदमी इसी तरह के बेईमान थे। बेईमानी बड़ी प्राचीन है, वेदों से भी ज्यादा प्राचीन बेईमानी है। सब किताबें नई हैं। बेईमानी की किताब बहुत पुरानी है।
उन्होंने जल्दी से किताबें बाहर निकाल लीं। दरवाजा बंद हो चुका था।
वे फिर सवाल हल करने लगे। वह आदमी आधा घंटे तक, तीसरे नंबर का आदमी, आंख बंद किए बैठा रहा। फिर उठा चुपचाप, जैसे उसके पैरों में भी आवाज न हो। उन दो मित्रों को भी पता नहीं चला। वह उठा, दरवाजे पर गया, दरवाजे को धक्का दिया, दरवाजा अटका हुआ था, उस पर कोई ताला लगा ही नहीं था, वह बाहर निकल गया! सम्राट भीतर आया और उसने कहा कि दोनों बंद कर दो अपनी किताबें। जिस आदमी को निकलना था, वह निकल चुका है। उन दोनों ने चौंक कर देखा। उन्होंने कहा, यह आदमी कैसे निकल सकता है? इसने कुछ भी नहीं किया निकलने के लिए। सम्राट ने कहा कि यहां कुछ करने की जरूरत ही न थी। दरवाजा सिर्फ अटका हुआ था। और हम यह जानना चाहते थे कि तुम तीनों में जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान होगा, वह सबसे पहले यह देखेगा कि दरवाजा बंद है या नहीं। इसके पहले कि तुम सवाल हल करो, पहले यह तो जान लेना चाहिए कि सवाल है भी या नहीं? समस्या हो तो उसका समाधान हो सकता है। और अगर समस्या न हो तो उसका समाधान कैसे हो सकता है? समस्या को पहले जान लेना जरूरी है।
इस आदमी ने बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। इसने सबसे पहले यह देखना चाहा कि समस्या है या नहीं? दरवाजा अटका था, यह बाहर निकल गया। यह बुद्धिमान आदमी का पहला लक्षण है।
पर वे दोनों पूछने लगे कि तुमने किया क्या? उस आदमी ने कहा, मैंने कुछ
भी नहीं किया। क्योंकि मैंने सोचा कि मैं जो भी जानता हूं, उससे कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि सवाल बिल्कुल नया है, जिसको मैं बिल्कुल नहीं

जानता हूं। अब तक जो भी मैंने सीखा है, उससे इस सवाल का कोई भी संबंध नहीं है। जो मेरा ज्ञान है, वह बेकाम है तो फिर मैं क्या करूं?
फिर मैंने सोचा कि उचित यही है कि मैं अपने ज्ञान की फिकर छोड़ दूं, और मौन और शांत होकर बैठ जाऊं। और देखूं, क्या मेरे मौन से भी उत्तर आ सकता है? क्या मैं शांति से भी कुछ उत्तर खोज सकता हूं? क्योंकि मैंने सोचा कि मैं जितना उत्तर खोजने की कोशिश करूंगा, उतना ही अशांत हो जाऊंगा और जितना अशांत हो जाऊंगा, उतना सवाल का हल करना मुश्किल हो जाएगा। सवाल नया है और मेरे पास सब उत्तर पुराने हैं। पुराना उत्तर काम नहीं आ सकता है। इसलिए मैंने कहा कि पुराने उत्तर की फिकर छोड़ दूं। मैं चुपचाप बैठ कर देखूं कि क्या कोई नया उत्तर आ सकता है? मैंने अपना सारा ज्ञान छोड़ दिया। जितने मेरे पास शब्द थे, मैंने कहा, क्षमा करो, विदा हो जाओ। मैं अब बिना शब्द के चुपचाप थोड़ी देर बैठना चाहता हूं।
और मैं हैरान हो गया। जब मैं पूरी तरह मौन बैठा, कोई मेरे भीतर बोला कि
उठ कर देख, दरवाजा खुला है, दरवाजा बंद नहीं है। मैं उठा, दरवाजा खुला था, मैं बाहर निकल गया। यह मैंने नहीं खोला है! मैंने सब खोज बंद कर दी थी। यह उत्तर आया है। यह उत्तर मेरा नहीं है, यह उत्तर परमात्मा का ही हो सकता है। तुम अपने उत्तर खोज रहे थे। इसलिए परमात्मा के उत्तर मिलने का कोई सवाल न था। मैंने अपनी फिकर छोड़ दी। मैं उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता था। मैं सिर्फ प्रतीक्षा करता रहा कि अगर कोई उत्तर हो तो आ जाए। और अगर किसी को उत्तर सुनना हो ऊपर का, तो फिर अपनी सारी बातचीत, अपने सारे शब्द खो देना जरूरी हैं। क्योंकि जब तक अपना शोरगुल भीतर चलता हो, तब तक कोई उत्तर नहीं सुनाई पड़ सकता।
जिन लोगों ने परमात्मा की आवाज सुनी है, वे वही लोग हैं, जिन्होंने अपनी आवाज खो दी है। जिन लोगों ने परमात्मा के सत्य को जाना है, वे वही लोग हैं, जिन्होंने अपने सीखे हुए शब्दों को मौन कर दिया है। जिन लोगों ने परमात्मा की किताब खोली है, वे वही लोग हैं, जिन्होंने आदमियों की सारी किताबों पर आंखें बंद कर ली। और वे लोग परमात्मा की तरफ आंखें उठा पाए हैं, जिन लोगों ने आदमिओं के पीछे चलना बंद कर दिया है।
मौन और शून्य में और शांति में उसका द्वार है। वह हम सबके निकट है। शायद वह हमें रोज पुकारता है, प्रतिपल हमारे द्वार पर दस्तक देता है। लेकिन हम सुनने को मौजूद कहां हैं? हम इतने शब्दों में खोए हैं कि उसकी शांत आवाज हमें कहां सुनाई पड़ सकेगी? हम इतने डूबे हुए हैं अपनी ही बातों में कि हमें उसकी वाणी का कैसे पता चल सकता है? इसलिए मैं जोर देकर बार-बार कहता हूं--छोड़ दें सब शब्द और हो जाएं निःशब्द। एक बार देखें, एक बार मौन होकर देखें कि क्या हो सकता है। बहुत दिन तक शब्दों में रह कर देखा है, एक बार निःशब्द होने का भी प्रयोग करके देखें। इस निःशब्द होने के प्रयोग को ही मैं ध्यान कहता हूं।
एक-दो मिनट इस ध्यान के संबंध में समझाऊं। फिर हम ध्यान के लिए दस मिनट बैठेंगे और विदा हो जाएंगे। क्योंकि जो मैंने कहा है, वह मेरे कहने से आपकी समझ में नहीं आ सकता। लेकिन यह हो सकता है कि मेरे कहने से आपको कुछ ख्याल आ जाए, कोई प्यास जग जाए और आप दस मिनट को जरा चुप होकर, मौन होकर देखें।
उस आदमी का ख्याल करें, जो उस कमरे में जाकर बैठ गया चुपचाप। क्या किया होगा उसने? उस आदमी ने क्या किया उतनी देर? उसने अपने सारे शब्दों को छोड़ दिया और फिकर की चुप हो जाने की, साइलेंट हो जाने की, मौन हो जाने की। और जब वह परिपूर्ण मौन हो गया तो उसे कुछ उत्तर मिला--जो उत्तर उसका अपना नहीं था; जो कहीं ऊपर से आया था, गहराई से आया था, जो परमात्मा का था।
हम भी दस मिनट इस शांत रात में चुप होने की कोशिश करें। यह हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। चूंकि हमने कभी कोई प्रयोग ही नहीं किया है, इसलिए नहीं हुआ हो। लेकिन जो कभी नहीं हुआ है, वह अब हो सकता है। जो आज नहीं हुआ है, वह कल हो सकता है। संभावना हमेशा, शेष है। जो थोड़ा-सा श्रम करते हैं, उनकी संभावना वास्तविक बन जाती है।

क्या करेंगे दस मिनट के लिए यह हम यहां? देखते हैं, रात चारों तरफ बिल्कुल शांत है--वृक्ष शांत हैं, चांद-तारे शांत हैं, हवाएं शांत हैं। क्या इनके साथ दस मिनट के लिए हम भी शांत होकर चुप नहीं बैठ सकते हैं?
बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि भीतर वह शब्दों का जाल है--वह चलता ही रहेगा,
वह सोचता रहेगा कि दस मिनट कब खत्म हो जाएं। वह बार-बार आंख खोल कर देखेगा कि पड़ोसी आदमी क्या कर रहे हैं? वह जो भीतर शब्दों का जाल है, वह जो भीतर टुच्चा दिमाग है, वह जो छोटा सा शेलो माइंड है, वह उथला मन इसी तरह की बातों में दस मिनट गंवा देगा। वह चुप नहीं होगा।
नहीं, लेकिन वह चुप किया जा सकता है, अगर हम थोड़े होशपूर्वक प्रयोग करें। क्या करेंगे, जिससे वह चुप हो जाए?
एक ही रास्ता है दुनिया में चुप होने का। एक ही रास्ता है, कभी कोई दूसरा रास्ता नहीं है--और वह रास्ता है साक्षीभाव का। जो आदमी दस मिनट के लिए भी अगर साक्षी होकर बैठ जाए--एक विटनेस।
यह रात है हमारे चारों तरफ, ये लोग हैं हमारे चारों तरफ--कोई बच्चा आवाज करेगा, कोई पक्षी शोर करेगा, रास्ते पर कोई गाड़ी गुजरेगी, हवाएं पत्तों को हिला देंगी। चारों तरफ कुछ होगा। अगर आप दस मिनट अपने भीतर सिर्फ एक भाव लेकर बैठ जाएं कि मैं एक दर्शक हूं, एक द्रष्टा हूं। मैं सिर्फ चुपचाप देखता रहूंगा। जो हो रहा है, उसका अनुभव करता रहूंगा। मैं अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करूंगा, सिर्फ देखता रहूंगा। जैसे कोई आदमी नदी के किनारे खड़ा हो जाए और नदी को बहता हुआ देखे। जैसे कोई आदमी आकाश के नीचे खड़ा हो जाए आकाश में चलते हुए बादलों को देखे, उड़ते हुए पक्षियों की कतार देखे। जैसे कोई आदमी बाजार में खड़ा हो जाए--और इस तरह बाजार में खड़ा हो जाए, जैसे किसी नाटक में खड़ा है और बाजार में चलती हुई दुकानों को और चलते हुए लोगों को इस तरह देखे, जैसे फिल्म के पर्दे पर चीजें चलती हों।
सिर्फ देखता रह जाए और कुछ भी न करे तो एक बड़ी अदभुत घटना घटती है। अगर
आप सिर्फ देखते रह जाएं चुपचाप तो भीतर एक शांति होनी शुरू हो आती है, शब्द खोने शुरू हो जाते हैं।
साक्षीभाव शब्दों की मृत्यु बन जाता है।
तो दस मिनट हम साक्षी का एक प्रयोग करेंगे। उस प्रयोग के दो-तीन छोटे
से सूत्र हैं।
पहली बात तो है कि जब हम अभी प्रयोग के लिए बैठेंगे तो शरीर को बिल्कुल आराम में ढीला छोड़ कर बैठना है, जैसे शरीर में कोई प्राण ही न हों, कोई तनाव शरीर पर न हो, कोई स्ट्रेन न हो।
दूसरी बात आंखों को बंद कर लेंगे। बंद करने में भी आंखों पर कोई जोर न पड़े। धीरे से आंखों की पलकें ढीली छोड़ देंगे। फिर बिजली बुझा दी जाएगी, अंधेरा हो जाएगा। चांद का प्रकाश है, धीमी सी उसकी रोशनी नीचे गिरती रहेगी। उस चांद की रोशनी में आंख बंद किए हम दस मिनट के लिए, सिर्फ दस मिनट के लिए हम चुपचाप साक्षी बन कर रह जाएंगे।
हम कुछ भी नहीं करेंगे। हम बैठे हैं एक नाटक में, एक भागीदार हैं। हम सिर्फ चुपचाप सुन रहे हैं, जो सुनाई पड़ रहा है। जो अनुभव हो रहा है, वह अनुभव कर रहे हैं। भीतर विचार चलेंगे तो उनको भी चुपचाप देखते रहेंगे कि वह चल रहे हैं, हम देख रहे हैं। हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। जो चलता है, उसे चलने देना है।
चुपचाप दस मिनट देखने पर हैरानी होगी--जितना सन्नाटा बाहर है, उतना ही सन्नाटा भीतर भी पैदा हो जाएगा। एक बार भी, एक क्षण को भी, अगर भीतर सब मौन हो जाए तो एक नई दुनिया में कदम उठ जाता है। यह तो प्रयोग के लिए हम करेंगे यहां।
अगर किसी को प्रीतिकर लगे और किसी को लगे कि कुछ हो सकता है तो वह दस मिनट रोज रात सोने के पहले करता रहे। तीन महीने में वह हैरान हो जाएगा। दस मिनट की चोट तीन महीने में भीतर एक द्वार खोल देगी। उससे कुछ नई दुनिया की शुरुआत मालूम होने लगेगी। वह अपने भीतर एक नये आदमी से परिचित हो जाएगा, जिससे वह कभी भी परिचित नहीं रहा।

सत्य की खोज
चौथा प्रवचन

स्वप्न से सत्य की ओर
(27 फरवरी 1969 सुबह)

प्रिय आत्मन्!
सूर्य के प्रकाश में गिरनार के चमकते मंदिरों को अभी देख कर मैं आया--
उन मंदिरों को देख कर मुझे ख्याल आया, आत्मा के भी ऐसे ही गिरनार-शिखर हैं। आत्मा के उन शिखरों पर भी इनसे भी ज्यादा चमकते हुए मंदिर हैं। उन मंदिरों पर परमात्मा का और भी तीव्र प्रकाश है।
लेकिन हम तो बाहर के मंदिरों में ही भटके रह जाते हैं और भीतर के मंदिरों का कोई पता भी नहीं चल पाता! हम तो पत्थर के शिखरों में ही यात्रा करते हुए जीवन गंवा देते हैं! चेतना के शिखरों का कोई अनुभव ही नहीं हो पाता!
जैसे गिरनार के इस पर्वत पर चढ़ने वाली पगडंडियां हैं, ऐसी ही चेतना के शिखरों पर चढ़ने वाली पगडंडियां भी हैं। लेकिन एक फर्क है उन पगडंडियों में और इन पगडंडियों में। चेतना के जगत में कोई चरण-चिह्न नहीं बनते हैं। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं तो कोई उनके चिह्न पीछे नहीं छूट जाते। पीछे आने वाले पक्षियों को, आगे उड़ गए पक्षियों के मार्ग पर चलने का कोई भी उपाय नहीं। प्रत्येक पक्षी को अपने ही मार्ग पर उड़ना होता है।
ऐसे ही सत्य के मार्ग पर कोई राजपथ नहीं बने हैं, कोई बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपना रास्ता बनाना पड़ता है। चलने से ही वहां रास्ता बनता है। चलने के पहले वहां कोई भी रास्ता बना हुआ नहीं है। रास्ते अगर बने होते तो हम किसी का अनुगमन करके उन शिखरों पर पहुंच सकते थे। लेकिन वहां कोई रास्ता निर्मित ही नहीं होता। वहां आदमी चलता है और चरण-चिह्न मिट जाते हैं, पुंछ जाते हैं, आकाश में खो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही रास्ता खोजना पड़ता है।
प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही रास्ता बनाना पड़ता है।
लेकिन फिर भी उन रास्तों के संबंध में कुछ इशारे किए जा सकते हैं। उन रास्तों के संबंध में कुछ संकेत किए जा सकते हैं। इस अंतिम चर्चा में उन संकेतों पर ही कुछ बात करनी है।
पहले सूत्र में कुछ बातें कही थीं, दूसरे सूत्र में कुछ और, और आज तीसरे सूत्र पर आपसे बात करूंगा। यह तीसरा सूत्र थोड़ा सांकेतिक है, सिंबालिक है। इसे थोड़ा समझना होगा। इस संकेत की तरफ पहली बात--जिन लोगों को सत्य की यात्रा करनी है, उन्हें पहला संकेत समझ लेना है। और वह पहला संकेत यह है कि साधारणतः जिस जीवन को हम सत्य समझते हैं, वह जीवन सत्य नहीं है। और जब तक हम इस जीवन को सत्य समझे चले जाएंगे, तब तक जो सत्य है, उस दिशा में हमारी आंखें भी नहीं उठेंगी। जो जीवन हमें सत्य मालूम पड़ता है, जिन्हें सत्य की यात्रा करनी है, उन्हें इस जीवन को सपने की भांति समझना शुरू करना पड़ता है--यह पहला संकेत है।
यह जो हमारा बाहर का फैलाव है, यह जो जन्म से लेकर मृत्यु तक की लंबी यात्रा है--यह सत्य है या एक सपना है?
इस संबंध में थोड़ा विचार करना जरूरी है। साधारणतः हम इसे सत्य मान कर
ही जीते हैं। लेकिन कभी हमने बहुत शायद विचार नहीं किया। रात हम सपना देखते हैं तो देखते समय सपना भी सत्य ही मालूम पड़ता है। कभी आपको सपने में ऐसा पता नहीं चला होगा कि जो आप देख रहे हैं, वह असत्य है। सपना भी सत्य ही मालूम होता है। बार-बार सपने देखते हैं, रोज-रोज सपने देखते हैं, जीवन भर सपने देखते हैं। फिर भी सपना देखते समय सत्य ही मालूम पड़ता है! यह स्मरण ही नहीं आता कि जो हम देख रहे हैं, वह भी असत्य हो सकता है!
जो लोग और बड़े सत्य के प्रति जागते हैं, वे कहते हैं कि हम जो आंख खोल
कर दुनिया देख रहे हैं, वह दुनिया भी सपना है।

एक सम्राट का युवा पुत्र बीमार पड़ा। एक ही बेटा था उसका, वह मरणशय्या
पर पड़ा था। चिकित्सकों ने कहा था कि बचने की कोई उम्मीद नहीं। उस रात ही उसका दीया बुझ जाएगा, इसकी संभावना थी।
सम्राट रात भर जाग कर बैठा रहा। सुबह भोर होते-होते उसकी झपकी लग गई। सम्राट अपनी कुर्सी पर बैठा-बैठा ही पांच बजे के करीब सो गया। सोते ही भूल गया उस बेटे को, जो सामने खाट पर बीमार पड़ा था; जो उस महल को जिसमें बैठा था, उस राज्य को जिसका मालिक था।
एक सपना आना शुरू हुआ। उस सपने में उसने देखा कि सारी पृथ्वी का मैं मालिक हूं। बारह बेटे हैं उसके, बहुत सुंदर, स्वर्ण जैसी उनकी काया है, बहुत स्वस्थ, बहुत बुद्धिमान। सारी पृथ्वी पर फैला हुआ है राज्य, स्वर्ण के महल हैं उसके पास, हीरे-जवाहरातों की सीढ़ियां हैं, वह अतीव आनंद में है। और तभी इस बाहर लेटे हुए बेटे की सांस टूट गई। पत्नी छाती पीट कर रोने लगी। रोने से नींद खुल गई सम्राट की। आंख खोल कर वह उठा। खो गए वे सपने के स्वर्ण महल, खो गए वे बारह बेटे, खो गया वह चक्रवर्ती का बड़ा राज्य! देखा तो बाहर बेटा मर चुका है, पत्नी रोती है। लेकिन उसकी आंखों में आंसू नहीं आए, ओंठों पर हंसी आ गई उस सम्राट के!
पत्नी कहने लगीः क्या तुम्हारा मन विक्षिप्त हो गया? क्या तुम पागल
हो गए हो? बेटा मर गया है और तुम हंस रहे हो!
वह सम्राट कहने लगाः मुझे हंसी किसी और बात से आ रही है। मैं इस चिंता में पड़ गया हूं कि किन बेटों के लिए रोऊं? अभी-अभी बारह मेरे बेटे थे, स्वर्ण के महल थे, बड़ा राज्य था। तू रोई मेरा सारा वह राज्य छिन गया, मेरे वे बेटे छिन गए! आंख खोलता हूं, तो वे सब खो गए हैं!
और यह बेटा, जब तक आंख बंद थी, खो गया था। मुझे याद भी नहीं थी कि मेरा कोई बेटा है, और जो बीमार पड़ा है। जब तक वे बारह बेटे थे, इस बेटे की मुझे कोई याद न थी! और अब जब यह बेटा दिखाई पड़ रहा है, तब वे बारह बेटे खो गए हैं! अब मैं सोचता हूं कि मैं किसके लिए रोऊं? उन बारह बेटों के लिए, उन स्वर्णमहलों के लिए, उस बड़े राज्य के लिए या इस बेटे के लिए?
और मुझे हंसी इसलिए आ गई है कि कहीं दोनों ही सपने तो नहीं हैं--एक आंख बंद का सपना और एक आंख खुले का सपना। क्योंकि जब तक आंख बंद थी, यह भूल गया था! और जब आंख खुली है तो, वह जो आंख बंद में दिखाई पड़ा था, वह भूल गया!
एक सपना है, जो हम आंख बंद करके देखते हैं और एक सपना है, जो हम आंख खोल
कर देखते हैं! लेकिन वे दोनों ही सपने हैं।
च्वांगत्सु चीन में हुआ, एक फकीर। सदा लोगों ने उसे हंसते ही देखा था, कभी उदास नहीं देखा। एक दिन सुबह उठा और उदास बैठ गया झोपड़े के बाहर! उसके मित्र आए, उसके प्रियजन आए और वे पूछने लगे, आपको कभी उदास नहीं देखा। चाहे आकाश में कितनी ही घनघोर अंधेरी छाई हो और चाहे जीवन पर कितने ही दुखदाई बादल छाए हों, आपके ओंठों पर सदा मुस्कुराहट देखी है। आज आप उदास क्यों हैं? चिंतित क्यों?
च्वांगत्सु कहने लगाः आज सचमुच मैं एक ऐसी उलझन में पड़ गया हूं, जिसका कोई हल सूझे नहीं सूझता।
लोगों ने कहाः हम तो अपनी समस्याएं लेकर आते हैं आपके पास और सभी समस्याओं के समाधान हो जाते हैं। आपको भी कोई समस्या आ गई! क्या है वह समस्या?
च्वांगत्सु ने कहाः बताऊंगा जरूर, लेकिन तुम भी हल न कर सकोगे। और मैं सोचता हूं कि शायद अब इस पूरे जीवन, वह हल नहीं हो सकेगी!
रात मैंने एक सपना देखा है। उस सपने में मैंने देखा कि मैं एक बगीचे में तितली हो गया हूं और फूलों-फूलों पर उड़ता फिर रहा हूं।
लोगों ने कहाः इसमें ऐसी कौन सी बड़ी समस्या है? आदमी सपने में कुछ भी
हो सकता है।
च्वांगत्सु ने कहाः मामला यही होता तो ठीक था। लेकिन जब मैं जागा तो मेरे मन में एक प्रश्न पैदा हो गया कि अगर च्वांगत्सु नाम का आदमी सपने में तितली हो सकता है तो कहीं अब ऐसा तो नहीं है कि तितली सो गई हो और सपना देखती हो कि च्वांगत्सु हो गई! मैं सुबह से परेशान हूं। अगर आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली भी तो सपने में आदमी हो सकती है। और अब मैं तय

नहीं कर पा रहा हूं कि मैं तितली हूं, जो सपना देख रही है आदमी होने का या कि मैं आदमी था, जिसने सपना देखा तितली होने का! और अब यह कौन तय करेगा? मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। शायद यह कभी तय नहीं हो सकेगा।
च्वांगत्सु ठीक कहता है, जो हम बाहर देखते हैं, वह भी क्या एक खुली आंख
का सपना तो नहीं? क्योंकि आंख बंद होते ही वह मिट जाता है और खो जाता है और विलीन हो जाता है। आंख बंद होते ही हम किसी दूसरी दुनिया में हो जाते हैं। और आंख खोल कर भी जो हम देखते हैं, उसका मूल्य सपने से ज्यादा नहीं मालूम होता।
आपने जिंदगी जी ली है--किसी ने पंद्रह वर्ष, किसी ने चालीस वर्ष, किसी
ने पचास वर्ष। अगर आज लौट कर पीछे की तरफ देखें कि उन पचास वर्षों में जो भी हुआ था, वह सच में हुआ था या एक सपने में हुआ था? तो क्या फर्क मालूम पड़ेगा? पीछे लौट कर देखने पर क्या फर्क मालूम पड़ेगा? जो भी हुआ था--जो सम्मान मिला था, जो अपमान मिला था--वह एक सपने में मिला था या सत्य में मिला था?
मरते क्षण आदमी को क्या फर्क पड़ता है कि जो जिंदगी उसने जी थी, वह एक कहानी थी जो उसने सपने में देखी थी, या सच में ही वह जिंदगी में घटी थी।
इस जमीन पर कितने लोग रह चुके हैं हमसे पहले! हम जहां बैठे हैं, उसके कण-कण में न मालूम कितने लोगों की मिट्टी समाई है, न मालूम कितने लोगों की राख है। पूरी जमीन एक बड़ा श्मशान है, जिसपर न मालूम कितने अरबों-अरबों लोग रहे हैं और मिट गएहैं। आज उनके होने और न होने से क्या फर्क पड़ता है? वे जब रहे होंगे, तब उन्हें जिंदगी मालूम पड़ी होगी कि बहुत सच्ची है। न जिंदगी रही उनकी, न वे रहे--आज सब मिट्टी में खो गए हैं।
आज हम जिंदा बैठे हैं, कल हम भी खो जाएंगे। आज से हजार वर्ष बाद हमारी राख पर लोगों के पैर चलते होंगे। तो जो जिंदगी आखिर में राख हो जाती हो, उस जिंदगी के सच होने का कितना अर्थ है? जो जिंदगी अंततः खो जाती हो, उस जिंदगी का कितना मूल्य?
जिस च्वांगत्सु की मैंने बात कही, वही च्वांगत्सु एक बार एक गांव से निकलता था। रात का वक्त था। गांव के बाहर आया तो एक मरघट पर एक खोपड़ी पड़ी थी आदमी की। वह उसके पैर से टकरा गई। और कोई आदमी होता तो जोर से लात मार कर उस खोपड़ी को अलग कर दिया होता। समझता कि अपशकुन हो गया, कहां बीच में खोपड़ी आ गई!
लेकिन च्वांगत्सु तो बहुत अदभुत आदमी था। उसने उस खोपड़ी को उठा कर सिर से लगा लिया और बहुत-बहुत क्षमा मांगने लगा कि क्षमा कर दो मुझे, भूल से मेरा पैर लग गया; अंधेरा है, रात है, मैं देख नहीं पाया कि आप भी यहां हैं!
अब वह खोपड़ी थी आदमी की--मरे हुए आदमी की, न मालूम वह आदमी कब मर गया था।
च्वांगत्सु के मित्र उससे कहने लगे, क्या पागलपन करते हो? किससे क्षमा मांग रहे हो?
च्वांगत्सु ने कहाः वह तो थोड़े समय के फर्क की बात है, अगर यह आदमी जिंदा होता तो आज मेरी मुसीबत हो जाती।
लेकिन वे लोग कहने लगे, अब यह आदमी जिंदा नहीं है।
च्वांगत्सु ने कहाः तुम्हें पता नहीं है, यह छोटे लोगों का मरघट नहीं है, यह गांव के बड़े लोगों का मरघट है!
मरघट भी अलग-अलग होते हैं गरीब आदमियों के अलग, अमीर आदमियों के अलग! जिंदगी में तो फर्क रहते हैं, मरने पर भी फर्क कायम रखते हैं!
च्वांगत्सु ने कहाः यह किसी बड़े आदमी की खोपड़ी है, किसी साधारण आदमी
की खोपड़ी नहीं है। अगर यह आदमी आज होता तो मेरी मुसीबत हो जाती।
लेकिन वे लोग कहने लगे, अब यह नहीं है तो मुसीबत का सवाल क्या है? च्वांगत्सु ने कहाः कि नहीं, क्षमा तो मुझे मांगनी ही चाहिए, और भी कई कारणों से मैं इससे क्षमा मांगता हूं और इस खोपड़ी को अपने साथ ही रखूंगा।
उस खोपड़ी को वह अपने साथ ले गया और रोज सुबह उठ कर क्षमा मांगने लगा।
मित्रों ने बहुत समझाया कि पागल हो जाओगे इस खोपड़ी को अपने पास रखकर।
क्षमा मांगने की जरूरत क्या है?

च्वांगत्सु कहने लगाः कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि यह बड़े आदमी की खोपड़ी है!
लेकिन मित्र कहने लगे, सब खोपड़ियां मिट्टी में मिल जाती हैं--छोटे आदमी की भी और बड़े आदमी की।
और मिट्टी कोई फर्क नहीं करती है कि कौन बड़ा था, कौन छोटा। और जब छोटे
और बड़े सभी मिट्टी में मिल जाते हैं तो छोटे होना और बड़े होना कहीं एक सपना तो नहीं है? जो मिट्टी सब सपनों को मिटा देती है और एक सा कर देती है। छोटा और बड़ा होना कोई असलियत नहीं मालूम होती, किसी सपने का ख्याल मालूम होता है।
फिर च्वांगत्सु कहने लगाः मैं इसलिए इसे अपने पास रखता हूं कि अपनी खोपड़ी को भी याद करता रहूं कि आज नहीं कल, किसी मरघट पर पड़ी रहेगी। चलते- फिरते लोगों की ठोकर लगेगी और फिर मैं कुछ भी न कर सकूंगा। जब आखिर में यही हो जाना है तो आज ही मेरे सिर में अगर किसी का पैर लग जाए तो नाराज होने की जरूरत क्या है? जब यह हो ही जाना है तब यह हो ही गया है।
जो जानते हैं, वे कहेंगे कि जो हो ही जाना है, वह हो ही गया है। अगर जिंदगी मिट जानी है तो मिटी ही हुई है। और अगर जिंदगी मिट्टी में गिर जानी है तो मिट्टी में गिरी हुई है। यह थोड़ी देर का ख्वाब है, थोड़ी देर का सपना है कि लगता है कि सब ठीक है।
अगर हम थोड़ा विस्तार से जीवन को देखेंगे तो हम पाएंगे सभी कुछ खो जाता है, सभी कुछ मिट्टी हो जाता है। और जहां सभी कुछ मिट्टी हो जाता हो, वहां सत्य मानने का कितना कारण है?
लेकिन हम कहेंगे कि सपना तो क्षण भर का होता है रात में, जिंदगी तो सत्तर-अस्सी वर्ष, सौ वर्ष की होती है। लेकिन अगर और थोड़ी आंखें खोल कर हम देखें तो इस विराट जगत में सौ वर्ष भी क्षण भर से ज्यादा नहीं मालूम होते। इस पृथ्वी को बने कोई चार अरब वर्ष हो चुके हैं। इस सूरज को बने कोई छह अरब वर्ष हो चुके हैं, लेकिन यह सूरज दुनिया में सबसे नया अतिथि है। वे जो और तारे हैं, वे इससे बहुत पुराने हैं। यह सूरज सबसे नया है, छह अरब वर्ष, यह बहुत नया मेहमान है। वे जो और तारे हैं, उनकी संख्या लगाना बहुत मुश्किल है कि वे कितने पुराने हैं।
इस विराट समय के प्रवाह में सौ वर्ष का क्या अर्थ होता है? कोई भी अर्थ नहीं होता। कहीं चांद-तारों को पता भी नहीं चलता कि सौ वर्ष कब बीत गए। सौ वर्ष ऐसे ही बीत जाते हैं, जैसे घड़ी की टिक-टिक बीत जाती है, हमारा क्षण बीत जाता है। इस विराट जीवन की धारा में सौ वर्ष की कितनी लंबाई है? कोई भी लंबाई नहीं है शायद।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा। वह आदमी बहुत कंजूस था। उसने जीवन भर पैसे ही इकट्ठे किए थे। मरते वक्त उसने एक किताब पढ़ी थी और उस किताब में लिखा हुआ था कि स्वर्ग में पहुंचने पर वहां की एक-एक कौड़ी भी अरबों-खरबों रुपयों की होती है। वह आदमी तो जिंदगी भर रुपए ही इकट्ठे करता रहा था। मरते वक्त भी यही सोचता मरा कि अगर स्वर्ग में एक कौड़ी भी मिल जाए तो गजब हो जाए। क्योंकि अरबों-खरबों की होती है। जैसे ही उसकी आंख स्वर्ग में खुली, उसने कौड़ी खोजनी शुरू कर दी! देवताओं ने उससे पूछा कि क्या कर रहे हैं?
उसने कहा कि मैं एक कौड़ी चाहता हूं, सिर्फ एक कौड़ी! मैंने सुना है, अरबों-खरबों की होती है एक कौड़ी स्वर्ग की।
उन देवताओं ने कहाः ठहरो, एक क्षण ठहरो, हम तुम्हें दे देंगे।
एक क्षण की जगह, घंटों बीतने लगे, दिन बीतने लगे तो उसने कहाः महाशय,
वह एक क्षण कब बीतेगा?
तो उन देवताओं ने कहा कि तुम्हें ख्याल नहीं, जिस स्वर्ग में एक कौड़ी अरबों-खरबों की होती है, वहां एक क्षण भी अरबों-खरबों वर्षों का होता है। एक क्षण रुको, अभी दे देंगे।
वहां पैमाने, जीवन के पैमाने, बहुत बड़े हैं। अंतहीन पैमानों में सौ वर्षों का क्या अर्थ है? कितना अंतहीन पैमाना है, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल। कब से समय चल रहा है, कब तक समय चलेगा?

बट्रेंड रसेल ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। उसने लिखा है कि एक चर्च
का एक पादरी एक रात सोया और उसने स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। लेकिन द्वार इतना बड़ा है कि उसके ओर-छोर का कोई पता नहीं चलता। वह सिर उठा कर ऊपर देखता है, देखता है, देखता है--लेकिन उसका कोई अंत नहीं। वह उस द्वार पर जोर-जोर से थपकी देता है।
लेकिन उतने बड़े द्वार पर उस छोटे से आदमी की थपकियों की क्या आवाज पैदा होती? उस अंतहीन सन्नाटे में कोई आवाज पैदा नहीं होती। वह सिर पटक-पटक कर मर जाता है और बहुत दुखी होता है। क्योंकि सदा उसने यही सोचा था कि मैं तो भगवान की दिन रात पूजा और प्रार्थना करता हूं। जब मैं जाऊंगा तो भगवान मुझे द्वार पर ही हाथ फैलाए हुए, आलिंगन करने को तैयार मिलेंगे। यहां दरवाजा ही बंद है। और यहां इतने जोर से पीटता है वह, लेकिन कोई आवाज नहीं होती, क्योंकि दरवाजा इतना बड़ा है!
बहुत चिल्लाने, बहुत शोरगुल मचाने पर एक खिड़की दरवाजे में से खुलती
है और कोई झांकता है। लेकिन वह पादरी घबरा जाता है और द्वार की संध में सरक जाता है। क्योंकि वे आंखें इतनी तेज हैं, और एक दो आंखें नहीं हैं, हजार-हजार आंखें हैं। वे इतनी तेज हैं कि वह घबरा जाता है और चिल्ला कर कहता है, कृपा करके भीतर हो जाइए और वहीं से बात करिए, देखिए मत। एक-एक आंख एक-एक सूरज मालूम पड़ती है! वह कहता है, हे भगवान, आपके दर्शन हो गए, बड़ी कृपा हुई! लेकिन वह जो आदमी झांकता है द्वार से, वह कहता है मैं भगवान नहीं हूं, यहां का द्वारपाल हूं। और तुम कहां छिप गए हो, मुझे दिखाई नहीं पड़ते? कितने छोटे आदमी हो, कहां से आ गए हो? वह जो हजार-हजार आंखों वाला आदमी है, उसको भी वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता--इतना छोटा है! उस पादरी के मन में बड़ी दीनता मालूम होती है कि मैं सोचता था भगवान द्वार पर मिलेंगे, यह तो केवल द्वार का चपरासी है।
वह पादरी कहता है कि आपको पता नहीं कि मैं आने वाला था?
उस द्वारपाल ने कहा कि तुम जैसा जीव-जंतु पहली बार ही देखा गया अनंत काल में यहां। कहां से आए हो?
उसने कहा, पृथ्वी से आ रहा हूं।
उस द्वारपाल ने कहा कि यह नाम कभी सुना नहीं है, यह पृथ्वी कहां है?
तब उसकी श्वासें सरक गईं, हृदय की धड़कन उसकी बंद होने लगी। जब पृथ्वी
का ही नाम नहीं सुना तो पृथ्वी पर ईसाई धर्म का नाम कहां से सुना होगा और ईसाई धर्म के भी केथैलिक संप्रदाय का कहां नाम सुना होगा? और केथैलिक संप्रदाय का भी फलां-फलां गांव के चर्च का इसको क्या पता होगा? और चर्च के पुजारी का कहां-कहां हिसाब होगा--जब वह कहता है, पृथ्वी का नाम पहली बार सुना गया है! कहां है यह पृथ्वी?
तो वह पुजारी कहता है सौर परिवार है कि सूरज का एक परिवार है, उसमें पृथ्वी एक ग्रह है।
वह द्वारपाल कहता है, तुम्हें कुछ अंदाज नहीं, कितने अनंत सूरज हैं? कौन सा सूरज? नंबर क्या है? इंडेक्स नंबर क्या है, तुम्हारे सूरज का? शायद तुम नंबर बता सको अपने सूरज का तो कुछ खोज-बीन की जा सकती है कि तुम किस सौर-परिवार से आते हो?
उसने कहाः नंबर! हम तो एक ही सूरज जानते हैं।
फिर भी उसने कहाः कोशिश की जाएगी। खोज-बीन की जाएगी। खोज-बीन करने से शायद पता चल जाए। लेकिन बहुत कठिन है पता लगना!
घबड़ाहट में उस पादरी की नींद खुल जाती है। वह पसीने से तर-बतर और उसको पहली दफा पता चलता है कि जिस विराट जगत में वह है, वहां कहां पृथ्वी का कोई ठिकाना है!
यह पृथ्वी कितनी छोटी है, लेकिन हमें कितनी बड़ी मालूम पड़ती है। इस पृथ्वी से सूरज साठ हजार गुना बड़ा है और सूरज बहुत छोटा ग्रह है। वे जो तारे हमें दिखाई पड़ते हैं आकाश में, वे सूरज से बहुत बड़े-बड़े हैं, लेकिन छोटे दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि फासला बहुत ज्यादा है। इस सूरज से किरण को आने में पृथ्वी तक दस मिनट लग जाते हैं। और किरण की यात्रा बहुत तेज है। सूरज की किरण चलती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। एक सेकेंड

में एक लाख छियासी हजार मील की गति से सूरज की किरण चलती है! सूरज से किरण के आने में दस मिनट लग जाते हैं।
सूरज बहुत दूर है, लेकिन बहुत दूर नहीं है। सूरज के बाद जो सबसे निकट
का तारा है, उसकी किरण को पहुंचने में पृथ्वी तक चार वर्ष लग जाते है। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की रफ्तार से चलने वाली किरण चार वर्षों में पृथ्वी पर पहुंच पाती है!
और वह तो निकटतम तारा है। और दूर के तारे हैं, जिनसे सौ वर्ष लगते हैं,
दो सौ वर्ष लगते हैं, हजार वर्ष लगते हैं, करोड़ वर्ष लगते हैं, अरब वर्ष लगते हैं। ऐसे तारे हैं, जिनकी चली हुई किरण, अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुंची! और उस समय चली थी, जब पृथ्वी बन रही थी, चार अरब वर्ष पहले! उसके आगे भी तारे हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, जिनकी किरण कभी भी नहीं पहुंचेगी!
इतने बड़े इस विस्तार के जगत में पृथ्वी का मूल्य क्या है? और इस पृथ्वी पर हमारा मूल्य क्या है? लेकिन हम अपना कुछ मूल्य मान कर जीते हैं। वह जितना हम मूल्य मानते हैं, उतने ही हम अशांत होते है। जितना हम मूल्य मानते हैं, उतने ही हम परेशान होते हैं। जितना हम मूल्य मानते हैं, उतने ही हम पीड़ित होते हैं। और जितना हम मूल्य मान कर अशांत हो जाते हैं, उतना ही सत्य के दर्शन की संभावना क्षीण और कम हो जाती है। सत्य का दर्शन उन्हें हो सकता है, जो शांत हों।
और शांत होने का पहला सूत्र है कि जिस जीवन को सत्य समझ रहे हैं, उसे सत्य मत समझना, उसे सपने से ज्यादा मूल्य मत देना।
जिस दिन जीवन सपना मालूम पड़ता है, उसी दिन चित्त शांत हो जाता है।
जब तक जीवन सत्य मालूम पड़ेगा, तब तक चित्त शांत नहीं हो सकता है, तब तक छोटी-छोटी चीज का बहुत मूल्य है हमें। हम तो सपने को सत्य मान कर परेशान हो जाते हैं! रात में एक आदमी सपने में भूत देख लेता है आंख खुल जाती है लेकिन छाती धड़कती रहती है। आंख खुल गई है, नींद खुल गई है, लेकिन वह सपना इतना सच मालूम पड़ा था है कि अभी भी प्राण धक-धक घबड़ा रहे हैं।
हम तो नाटक को भी सच मान लेते हैं। सिनेमागृह में जाकर देखें लोगों को
न मालूम कितने लोग आंसू पोंछ रहे हैं रूमालों से। वह परदे पर कुछ भी नहीं चल रहा है सिवाय बिजली की धारा के, सिवाय नाचती हुई विद्युत के। वहां कुछ भी नहीं है परदे पर। और मालूम है भलीभांति कि कोरा परदा है पीछे। उस कोरे परदे पर जो विद्युत की किरणें दौड़ रही हैं और चित्र बन रहे हैं। कोई रो रहा है, कोई हंस रहा है, कोई घबरा रहा है! हम तो नाटक को भी सच मान लेते हैं!
और सत्य की खोज का पहला सूत्र है कि जिसे हम सच कहते हैं, उसे भी नाटक जानना, तो आदमी सत्य को उपलब्ध हो सकता है।
बंगाल के एक बहुत बड़े विचारक थे, ईश्वरचंद्र विद्यासागर। एक नाटक को देखने गए। नाटक में एक अभिनेता है, जो एक स्त्री के पीछे बहुत बुरी तरह से पड़ा हुआ है। वह स्त्री को सब तरह से परेशान कर रहा है। आखिर एक एकांत रात्रि में उसने स्त्री के घर में कूदकर उस स्त्री को पकड़ लिया। विद्यासागर के बरदाश्त के बाहर हो गया। वह भूल गए कि यह नाटक है। जूता निकाल कर मंच पर कूद पड़े और उस आदमी को लगे जूता मारने! सारे देखने वाले दंग रह गए कि यह क्या हो रहा है?
लेकिन उस अभिनेता ने क्या किया? उसने विद्यासागर का जूता अपने हाथ में ले लिया, जूते को नमस्कार किया और जनता से कहा, इतना बड़ा पुरस्कार मेरे जीवन में मुझे कभी नहीं मिला। मेरे अभिनय को कोई इतना सत्य समझ लेगा, वह भी विद्यासागर जैसा बुद्धिमान आदमी; यह मैंने कभी सोचा नहीं था! मेरा अभिनय इतना सत्य हो सकता है--मैं धन्य हो गया, इस जूते को मैं सम्हाल कर रखूंगा! मुझे बहुत इनामें मिली हैं, लेकिन इतनी बड़ी इनाम मुझे कभी भी नहीं मिली। विद्यासागर तो बहुत झेंपे होंगे जाकर अपनी जगह बैठ गए। बाद में लोगों
से कहा कि बड़ी हैरानी की बात है। वह नाटक मुझे सच मालूम पड़ गया, मैं भूल ही गया कि जो देख रहा हूं, वह केवल नाटक है।
अगर नाटक भी सच मालूम पड़े तो आदमी अशांत हो जाता है और अगर जीवन नाटक मालूम पड़ने लगे तो आदमी शांत हो जाता है। जीवन जितना सपना मालूम पड़ने लगे आदमी उतना ही शांत हो जाता है क्योंकि सपने में अशांत होने का कारण क्या है? तब अगर गरीबी आती है तो सपना है और अमीरी आती है तो सपना है। तब बीमारी

आती है तो सपना है और स्वास्थ्य आता है तो सपना है। तब सम्मान मिलता है तो सपना है और अपमान मिलता है तो सपना है। तब अशांत और पीड़ित और परेशान और टेंस होने का कारण क्या है?
सारा तनाव इसलिए पैदा होता है कि जीवन हमें बहुत सच्चा मालूम पड़ता है, बहुत यथार्थ मालूम पड़ता है। जीवन बिल्कुल अयथार्थ है। जीवन बिल्कुल नाटक है और जितनी यह बात स्पष्ट होने लगे, उतना ही भीतर चित्त शांत होना शुरू हो जाता है। अशांत होने के कारण ही विलीन हो जाता है।
जापान के एक गांव में एक फकीर ठहरा हुआ था। बहुत सुंदर युवक, बड़ी कीर्ति थी उस गांव में उसकी। सारे लोग उसे सम्मान देते, आदर देते। लेकिन एक दिन स्थिति बदल गई। सारे गांव के लोग उसके विरोध में हो गए! सारा गांव उसके झोपड़े पर टूट पड़ा! लोगों ने जाकर पत्थर फेंके! उसके झोपड़े में आग लगा दी!
वह आदमी पूछने लगा, वह फकीर पूछने लगा, बात क्या है? मामला क्या है?
तो लोगों ने जाकर एक छोटे से बच्चे को उसकी गोद में पटक दिया और कहा कि मामला पूछते हो? गांव की एक लड़की को यह बच्चा पैदा हुआ है। यह बच्चा तुम्हारा है! उस लड़की ने कहा है कि इस बच्चे के बाप तुम हो! और हमसे बड़ी भूल हुई, जो हमने तुम्हें सम्मान दिया। हमसे बड़ी भूल हुई, जो हमने तुम्हारे लिए झोपड़ा बनाया और गांव में रहने की व्यवस्था की। तुम ऐसे चरित्रहीन सिद्ध होओगे, यह हमने कभी सोचा भी न था। यह बेटा तुम्हारा है।
वह बेटा रोने लगा था। वह फकीर उस बेटे को चुप कराने लगा। और उसने उन लोगों से कहा, इ.ज इट सो? ऐसा मामला है कि बेटा मेरा है? अब जब तुम कहते हो तो ठीक ही कहते हाओगे।
वे लोग गालियां देकर, झोपड़े में आग लगा कर, उस फकीर के सामान को फेंककर वापस लौट गए।
दोपहर होने पर वह फकीर गांव में भिक्षा के लिए निकला उस बेटे को लेकर! शायद दुनिया के किसी गांव में कोई फकीर कभी इस भांति भिक्षा मांगने नहीं निकला होगा। वह छोटा सा बेटा रो रहा है। वह फकीर एक-एक घर के सामने भीख मांगता है लोग द्वार बंद कर देते हैं! कौन उसे भीख देगा?
सारे गांव में भटक कर--लोग चारों तरफ से भीड़ लगाए हुए हैं, लोग गालियां
बक रहे हैं, अपमानजनक शब्द बोल रहे हैं! लोग पत्थर फेंक रहे हैं! वह उस छोटे बच्चे को बचाता हुआ उस घर के सामने पहुंचा, जिस घर की बेटी का वह बेटा है। वह उस घर के सामने भी चिल्लाता है कि मुझे खाना न मिले, समझ में आ सकता है, लेकिन इस छोटे से बच्चे को दूध तो मिल जाए। और मेरा कसूर हो सकता है, लेकिन इस छोटे से बच्चे का तो कोई भी कसूर नहीं।
भीड़ वहां दरवाजे पर खड़ी है। वह जिस लड़की का बेटा है, उसका हृदय पिघल जाता है, वह अपने बाप के पैर पकड़ लेती है और कहती है, मुझसे भूल हो गई। मैंने झूठ ही उस फकीर का नाम ले दिया, उस फकीर को तो मैं जानती भी नहीं। उस बेटे का बाप दूसरा है। उसी को बचाने के लिए मैंने फकीर का नाम ले दिया था। मैंने सोचा था थोड़ी-बहुत गाली-गलौज करके आप वापस लौट आएंगे, बात यहां तक बढ़ जाएगी, यह मैंने नहीं सोचा था, मुझे क्षमा कर दें।
बाप तो हैरान हो गया, आकर फकीर के पैर पड़ने लगा! उसके हाथ से उस छोटे बच्चे को छीनने लगा!
उस फकीर ने पूछा कि बात क्या है? मेरे बेटे को छीनते क्यों हो?
बाप ने कहाः आपका बेटा नहीं है, यह हमसे भूल हो गई! यह बेटा आपका नहीं, किसी और का है!
उस फकीर ने कहाः इ.ज इट सो? बेटा मेरा नहीं है? क्या कहते हो! सुबह तो तुम्हीं कहते थे कि तुम्हारा है!
सारे गांव के लोग कहने लगे कि तुम पागल कैसे हो? तुमने सुबह ही क्यों नहीं कहा कि बेटा मेरा नहीं है?
उस फकीर ने कहा, क्या फर्क पड़ता है, इस सपने में कि बेटा किसका है? क्या फर्क पड़ता है? किसी न किसी का होगा। और जब तुम इतने सारे लोग कहते हो तो ठीक ही कहते हो और इससे क्या फर्क पड़ता है? एक झोपड़ा तुमने जला ही दिया था, एक आदमी को गालियां दे ही चुके थे। और अगर मैं कहता कि मेरा नहीं है तो एक झोपड़ा और जलाते, एक और दूसरे आदमी को गालियां देते और क्या फर्क पड़ता?

पर वे लोग कहने लगे कि तुम्हें अपने सम्मान की फिकर नहीं है?
उस फकीर ने कहा, जिस दिन से यह दिखाई पड़ गया कि बाहर जो है, वह एक सपना है, उस दिन से सम्मान और अपमान में कोई फर्क नहीं रह गया, उस दिन से सब बराबर। सपने में सम्मान और अपमान में क्या फर्क हो सकता है? हां, असलियत हो तो फर्क हो सकता है। असलियत न हो तो क्या फर्क हो सकता है?
नेपोलियन हार गया था। और हारे हुए नपोलियन को सेंट हेलना नाम के एक छोटे से द्वीप में बंद कर दिया था। नेपोलियन था बादशाह, विजय का यात्री। फिर हार गया और एक छोटे से द्वीप पर साधारण कैदी की तरह बंद कर दिया गया। दूसरे दिन सुबह ही घूमने निकला है द्वीप पर, उसके साथ उसका डाक्टर है।
वे दोनों एक छोटी सी पगडंडी से निकल रहे हैं। एक खेत के बीच में से एक औरत, एक घास वाली औरत, घसियारिन अपने सिर पर घास का बोझ लिए हुए पगडंडी पर आती है। नेपोलियन का साथी डाक्टर चिल्ला कर कहता है, घास वाली औरत, रास्ते से हट जा, तुझे पता नहीं कि कौन आ रहा है? नेपोलियन आ रहा है!
नेपोलियन अपने डाक्टर मित्र का हाथ पकड़ कर नीचे खींचता है और कहता है, पागल, सपना बदल गया। वह दिन गए, जब हम लोगों से कहते थे, हट जाओ, नेपोलियन आ रहा है। अब हमें हट जाना चाहिए। नेपोलियन ने कहाः सपना बदल गया प्यारे! हट जाओ रास्ते से, वे जमाने गए, जब हम पहाड़ को कहते थे, हट जाओ और पहाड़ को हटना पड़ता था। अब तो घास वाली औरत के लिए भी हमको हट जाना चाहिए।
लेकिन नेपोलियन बड़ी समझ की बात कह रहा है। वह यह कह रहा है कि सपना बदल गया, वह यह कह रहा है कि सपना बदल गया, वह बात बदल गई। अब एक दूसरा सपना चल रहा है।
लेकिन डाक्टर बहुत दुखी हो जाता है, यह बात देख कर कि नेपोलियन को हटना पड़ा। नेपोलियन हंस रहा है। क्योंकि जिस आदमी को सपना मालूम पड़ रहा हो, उसके लिए रोने का कारण क्या रह गया?
नेपोलियन हार कर भी वही है, जो जीत कर था। और नेपोलियन ने यह कह कर कि
सब सपना है, एक अदभुत सत्य की गवाही दे दी।
जिंदगी अगर बाहर सपना दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, तो भीतर आदमी शांत होना शुरू हो जाता है।
फिर हार और जीत में फर्क क्या है? फिर हार भी वही है, जीत भी वही है। फिर सम्मान भी वही है, अपमान भी वही है। फिर जीवन भी वही है, मृत्यु भी वही है। फिर कैसी अशांति? फिर कैसा तनाव? फिर व्यक्तित्व के भीतर एक गंभीर शांति का अवतरण हो जाता है। वही शांति पगडंडी है उन शिखरों की, जहां सत्य के मंदिर हैं।
शांति की पगडंडी से आदमी सत्य के शिखरों तक पहुंचता है।
और शांति की पगडंडी पर वही चल सकते हैं, जिनको जीवन सपना दिखाई पड़ता है। जिन्हें जीवन एक सत्य, एक ठोस सत्य मालूम होता है, वे कभी शांति के मार्गों पर नहीं चल सकते। यह पहली बात। इससे ही जुड़ी हुई दूसरी बात।
जिस आदमी को जीवन सपना दिखाई पड़ने लगेगा, उस आदमी का व्यवहार क्या होगा? जिस आदमी को जिंदगी अयथार्थ मालूम होने लगेगी, वह आदमी जीएगा कैसे? उसके जीवन का सूत्र क्या होगा? सपने के साथ हम क्या करते हैं? सपने को देखते हैं, और तो कुछ भी नहीं कर सकते हैं?
जिस आदमी को पूरी जिंदगी सपना दिखाई पड़ने लगेगी, वह एक द्रष्टा हो जाएगा, वह एक साक्षी हो जाएगा। वह देखेगा और कुछ भी नहीं करेगा। जिंदगी जैसी होगी, उसे देखता चला जाएगा।
सपना है दृश्य, साक्षी है परिणति। सपना है आधार और साक्षी है उस पर उठा हुआ भवन।
जब कोई आदमी जीवन को सपना जान लेता है तो फिर एक साक्षी रह जाता है, एक द्रष्टा रह जाता है। फिर एक देखने वाले से ज्यादा उसका मूल्य और अर्थ नहीं होता। फिर वह जीवन में ऐसे जीता है, जैसे एक दर्शक। और जब कोई आदमी दर्शक की भांति जीवन में जीना शुरू कर देता है, तब उसके जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उस क्रांति का नाम ही धार्मिक क्रांति है। वह धर्म की क्रांति शास्त्रों के पढ़ने से नहीं होती, साक्षी बनने से होती है। वह धर्मों की क्रांति पिटे-पिटाए सूत्रों को कंठस्थ करने से नहीं होती, जीवन में

साक्षी के जन्म हो जाने से हो जाती है। और जो आदमी साक्षी की तरह जीने लगता है, वह चढ़ जाता है उन शिखरों पर, जहां सत्य का दर्शन होना निश्चित है।
तो दूसरा सूत्र हैः साक्षीभाव। जीवन में ऐसे जीना है, जैसे एक दर्शक। जैसे जीवन के बड़े पर्दे पर एक कहानी चल रही है और हम देख रहे हैं। एक दिन भर के लिए प्रयोग करके देखें और जिंदगी दूसरी हो जाएगी। एक दिन तय कर लें कि सुबह छह बजे से शाम छह बजे तक इस तरह जीएंगे, जैसे एक दर्शक। और जिंदगी को ऐसा देखेंगे, जैसे कहानी एक पर्दे पर चलती हो। और पहले ही दिन जिंदगी में कुछ नया होना शुरू हो जाएगा।
आज ही करके देखें, एक छोटा सा प्रयोग करके देखें कि जिंदगी को ऐसे देखेंगे, जैसे बड़े केनवास पर, एक बड़े पर्दे पर कहानी चलती हो और हम हों सिर्फ दर्शक। सिर्फ एक दिन के लिए प्रयोग करके देखें। और उस प्रयोग के बाद आप दुबारा वही आदमी कभी नहीं हो सकेंगे, जो आप थे। उस प्रयोग के बाद आप आदमी ही दूसरे हो जाएंगे।
साक्षी होने का छोटा सा प्रयोग करके देखें। देखें आज घर जाकर और जब पत्नी गाली देने लगे या पति गर्दन दबाने लगे, तब इस तरह देखें कि जैसे कोई साक्षी देख रहा है। और जब रास्ते पर चलते हुए लोग दिखाई पड़ें, दुकानें चलती हुई दिखाई पड़ें, दफ्तर की दुनिया हो; तब ख्याल रखें, जैसे किसी नाटक में प्रवेश कर गए और चारों तरफ एक नाटक चल रहा है। एक दिन भर इसका स्मरण रख कर देखें और आप कल दूसरे आदमी हो जाएंगे।
दिन तो बहुत बड़ा है, एक घंटे भी कोई आदमी साक्षी होने का प्रयोग करके देखे, उसकी जिंदगी में एक मोड़ आ जाएगा, एक टर्निंग आ जाएगी। वह आदमी फिर वही कभी नहीं हो सकेगा, जो एक के घंटे पहले था। क्योंकि उस एक घंटे में जो उसे दिखाई पड़ेगा, वह हैरान कर देने वाला हो जाएगा। और उस एक घंटे में उसके भीतर, जो परिवर्तन होगा, जो ट्रांसफार्मेशन होगा, उससे कीमिया ही बदल जाएगी। वह उसके भीतर चेतना के नए बिंदुओं को जन्म दे देगी। एक घंटे के लिए ऐसे देखें।
कि अगर पत्नी गालियां दे रही है, अगर मालिक गालियां दे रहा है, तो ऐसे देखें, कि जैसे आप सिर्फ एक नाटक देख रहे हों। फिर देखें कि क्या होता है? सिवाय हंसने के और कुछ भी नहीं होगा। सिवाय हंसने के और कुछ भी नहीं होगा। भीतर एक हंसी फैल जाएगी और चित्त एकदम हलका हो जाएगा।
और कल यही गाली बहुत भारी पड़ गई होती पत्थर की तरह, छाती पर पत्थर बन
कर बैठ गई होती। इस गाली ने भीतर जहर पैदा कर दिया होता। इस गाली ने भीतर प्राणों को मथ डाला होता। इस गाली ने भीतर जाकर जीवन को एक संकट, एक अशांति पैदा कर दी होती। जिंदगी एक प्रतिक्रिया बन जाती, एक रिएक्शन बन जाती। जिंदगी एक तूफान और एक आंधी हो जाती।
वही गाली आज आई और इधर भीतर अगर साक्षी है तो गाली ऐसे ही बुझ जाएगी, जैसे अंगारा पानी में पड़ कर बुझ जाए, और राख हो जाए। और आप देखते रह जाएंगे। और तब हैरानी होगी कि यही गाली कल पीड़ित करती थी, और आज, आज क्या हो गया है? यही बात कल बहुत कष्ट देती और आज, आज क्या हो गया! आज आप बदल गए है।
दुनिया वही है, दुनिया हमेशा वही है, सिर्फ आदमी बदल जाते हैं। और जब आदमी बदल जाता है तो दुनिया बदल जाती है।
पहला सूत्र हैः जीवन एक सपना है।
दूसरा सूत्र हैः उस सपने में एक साक्षी की तरह जीना है।
साधना के यही दो सूत्र हैं--जीवन एक सपना है और सपने में एक साक्षी की तरह जीना है।
और जो आदमी सपने में साक्षी की तरह जीना शुरू कर देता है, उसकी जिंदगी में क्या हो जाता है, इसे शब्दों में कहना मुश्किल है। इसे तो केवल करके ही जाना जा सकता है। इसे तो प्रयोग करके एक्सपेरिमेंट्स से ही पकड़ा जा सकता है और पहचाना जा सकता है कि क्या हो जाता है? यूं थोड़ा सा प्रयोग करें और देखें।
मंदिरों में जाने की फिकर छोड़ दें। जिंदगी ही मंदिर बन जाती है, अगर साक्षी बन कर खड़े हो जाएं।
पहाड़ों पर, हिमालय पर जाने की चिंता छोड़ दें। वह जिंदगी यहीं इसी क्षण तीर्थ बन जाती है, अगर साक्षी बन जाएं।

जो आदमी जहां साक्षी बन जाएगा, वहीं तीर्थ शुरू हो गया, वहीं एक नई घटना शुरू हो गई।
सुकरात मरने के करीब था। उसे जहर दिया जा रहा है। बाहर जहर पीसा जा रहा है। सुकरात लेटा हुआ है। उसके मित्र सब रो रहे हैं।
और सुकरात उनसे पूछता है कि तुम रोते क्यों हो?
तो उन मित्रों ने कहाः हम रोएं न तो और क्या करें? तुम मरने के करीब हो।
तो सुकरात ने कहाः पागलो, वह तो मैं जिस दिन जन्मा था, उसी दिन रो लेना था, क्योंकि जब जन्म शुरू हुआ, तभी मौत शुरू हो गई थी। अब तुम इतनी देर करके रोते हो? वह तो जब मैं जन्मा, तभी मरना शुरू हो गया था।
जब कहानी शुरू होती है, तभी उसका अंत भी आ जाता है। जब परदे पर फिल्म शुरू होती है, तभी जान लेना चाहिए कि समाप्ति भी आएगी। यह दि एण्ड--यह तो बहुत जल्दी आ जाने वाला है, वह अंत प्रारंभ में ही छिपा हुआ है। पागलो, सुकरात ने कहाः वह तो हम जन्मे थे, तभी हमने समझ लिया था कि मर गए, बात वहीं खत्म हो गई। अब क्या रोते हो? और सुकरात ने कहाः कि अगर रोना ही है तो अपने लिए रोना, मेरे लिए तुम क्यों रोते हो, जब मैं ही नहीं रो रहा हूं?
सुकरात ने कहा कि जाओ, जल्दी से देखो, वह जहर तैयार हुआ कि नहीं? सुकरात खुद उठकर बाहर गया। वह जहर पीसने वाले से कहने लगा कि समय हुआ जा रहा है, छह बजे जहर देना है, अभी तक जहर तैयार नहीं हुआ!
वह जहर पीसने वाला कहने लगा कि मैंने बहुत लोगों को जहर दिया, तुम जैसा पागल आदमी नहीं देखा! हम चाहते हैं कि थोड़ी देर लगा लें, तुम थोड़ी देर और जिंदा रह लो, थोड़ी देर और श्वासें ले लो। इतनी जल्दी क्या है मरने की? सुकरात कहने लगा, जल्दी कुछ भी नहीं है। लेकिन जिंदगी बहुत देख चुके, मौत को भी देख लेने का इरादा है! जिंदगी का सपना बहुत देख चुके, अब यह नई कहानी मौत को भी देख लेना चाहते हैं। इसलिए बड़ी उत्सुकता है कि जल्दी अब यह फिल्म खत्म हो और नई फिल्म शुरू हो, नया नाटक शुरू हो। इसलिए हम जल्दी पूछते हैं कि जल्दी करो।
सुकरात को जहर दे दिया गया। वह आदमी इस तरह जहर पी लिया, जैसे किसी और आदमी को जहर दिया गया हो! जहर पीता रहा और बातें करता रहा! जहर पीकर लेट गया और कहने लगा कि मेरे पैर ठंडे हो रहे हैं! ऐसा मालूम पड़ता है कि पैर ठंडे हुए जा रहे हैं।
मित्रों ने कहा, कि पैर ठंडे हुए जा रहे हैं! तुम्हीं ठंडे हुए जा रहे हो!
सुकरात ने कहा कि मैं ठंडा कैसे हो सकता हूं? मैं तो जान रहा हूं कि पैर ठंडे हो रहे हैं। मैं तो अब भी वही हूं। फिर उसने कहा कि मेरे घुटनों तक जहर छा गया, अब मेरी कमर तक, कि हाथ-पैर ऐसे हो गए हैं, जैसे हों ही न। मुझे पता नहीं चल रहा है।
लोगों ने कहाः क्या बातें कर रहे हो? तुम्हीं ठंडे हुए जा रहे हो।
सुकरात ने कहा कि मैं तो पूरी तरह वही का वही हूं, जो जहर देने के पहले था। हां, इतना मालूम पड़ रहा है कि हाथ-पैर ठंडे हुए जा रहे हैं। हाथ-पैर जा रहे हैं। यह हाथ-पैर वाली कहानी खत्म हुई जाती है। अब शायद कोई दूसरी कहानी शुरू होगी। मैं तो वही हूं! मैं तो अब भी देख रहा हूं!
जिंदगी भर जिसने देखा हो, वह मौत को भी देख सकता है। और जो मौत को भी देख सकता है, उसकी मौत कैसे हो सकती है?
जिसने साक्षी-भाव साध लिया, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
स्वामी राम अमरीका गए। वह बड़े अजीब आदमी थे। दुनिया में कुछ थोड़े से अजीब आदमी कभी-कभी पैदा हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में थोड़ी रौनक। स्वामी राम बहुत ही अजीब आदमी थे। अगर कोई उनको गाली दे देता तो वह खड़े होकर हंसने लगते और मित्रों को जाकर कहते कि आज बाजार में राम को खूब गालियां पड़ीं। लोग कहते राम को! आपको नहीं?
स्वामी राम कहते कि मुझको? मुझको लोग जानते ही नहीं, गालियां कैसे देंगे? राम को जानते हैं, राम को गालियां देते हैं। और जब राम को गालियां पड़ रही थीं, तब हम भीतर बैठ कर हंस रहे थे मन ही मन में कि अच्छा है बेटा, खूब गालियां पड़ रही हैं!

एक गांव में राम गया था स्वामी राम कहते हैं--एक गांव में राम गया था! गिर पड़ा एक गड्ढे में। हम खूब हंसे, हमने कहा कि अच्छे गिरे! अरे! बिना देख कर चलोगे तो गिरोगे ही! लोग कहते कि आप किसके बाबत बातें करते हैं? तो वे कहते, इस राम के बाबत बातें करता हूं!
और आप कौन हैं?
तो वे कहते, मैं तो सिर्फ देखने वाला हूं। यह राम पर कहानी चल रही है,
हम देख रहे हैं! राम की जिंदगी है, हम देख रहे हैं।
यह जो देखने की बात है, यह जो देखने की तरकीब है, यह जो देखने की टेक्नीक है, जिंदगी के प्रति साक्षी हो जाने की, यह जो कला है, यह धर्म का सारभूत रहस्य है।
देखें, जिंदगी को एक साक्षी होकर और तब एक नई जिंदगी की शुरुआत हो जाती है। वह नई शुरुआत सत्य पर ले जाती है। उस सत्य पर जिसका न कभी कोई जन्म हुआ। उस सत्य पर जिसकी न कभी कोई मृत्यु होती है। उस सत्य पर जो कहानी नहीं है। उस सत्य पर जो सपना नहीं है। लेकिन अगर हम इस सपने में और कहानी में ही खोए रहें तो शायद उसका हमें कभी भी पता नहीं चलता।
बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो जीवन के सत्य को जान पाते हैं। अधिक लोग जीवन के सपने में ही जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं!
सपने से जागना है, ताकि सत्य उपलब्ध हो सके।
और कहानी से जागना है, नाटक से जागना है, अभिनय से जागना है, ताकि वह जाना जा सके; जो अभिनय नहीं है, जो नाटक नहीं है, जो कहानी नहीं है। उसका नाम ही आत्मा है, उसका नाम ही परमात्मा है। चाहे कोई उसे सत्य कहे या कोई और नाम दे दे, और उसको जानते ही आदमी मुक्त हो जाता है। क्योंकि सब बंधन सपने के बंधन हैं।
कोई बंधन सच्चा बंधन नहीं। सब बंधन सपने के बंधन हैं। सब बंधन झूठे बंधन हैं। एक बार यह दिखाई पड़ जाए तो पता चलता है कि मैं तो मुक्त ही था, मैं तो सदा से ही मुक्त हूं। और यह जो प्रतीति है, यह कितने अनंत आनंदों से भर देती है, यह कितने आलोक से भर देती है, उसकी कोई गणना करनी कठिन है। इम्मेजरेबल, उसको नापने का कोई उपाय नहीं, उसे शब्दों में कहने का भी कोई उपाय नहीं, उसको अभिव्यक्ति देने का भी कोई मार्ग नहीं, उसे तो बस जाना जा सकता है और जीया जा सकता है।
उस जीने की दिशा में ये दो सूत्र बहुत याद रखने की जरूरत है। जीवन एक सपना है और हम एक साक्षी हैं। इसका थोड़ा प्रयोग करके ही देखा जा सकता है कि क्या परिणाम होते हैं। देखें--प्रयोग करके देखें और समझें। और जब तक उस प्रयोग को नहीं करते हैं, तब तक और कुछ भी करते रहें, सत्य का कोई पता कभी नहीं चल सकता है। सत्य का कभी कोई पता नहीं चल सकता है!
और कुछ भी करने से--न माला फेरने से, न राम-राम जपने से, न गीता पढ़ने से,
न कुरान पढ़ने से, न मंदिरों में पूजा--आराधना करने से--नहीं, और किसी तरह से सत्य का कोई पता न कभी चला है और न चल सकता है। सिर्फ वे ही जान पाते हैं उसे जो है, जो जाग जाते हैं, साक्षी हो जाते हैं। और साक्षी होते ही, साक्षी होते ही सब बदल जाता है। सब नया हो जाता है।
लेकिन यह बात प्रयोग की है। और यह बात कोई दूसरा आपके लिए नहीं कर सकता, आपको ही अपने लिए करनी पड़ेगी। यह रास्ता कोई दूसरा आपके लिए नहीं चल सकता। गिरनार के पहाड़ पर तो डोली में बैठ कर भी जाया जा सकता है, लेकिन इन सत्यों के शिखरों पर डोली में बैठ कर जाने का कोई उपाय नहीं। वहां कोई डोलियां उपलब्ध नहीं हैं और न कोई कहार, जो आपको चढ़ा कर ले जाए। वहां अपने ही पैरों पर भरोसा करना पड़ता है। किसी दूसरे के पैर साथ नहीं दे सकते। और वहां कोई बंधा हुआ रास्ता भी नहीं है। वहां चलने से ही रास्ता बनता है। जितना हम चलते हैं साक्षी की तरफ, उतना ही रास्ता निर्मित हो जाता है।
और एक बार थोड़ा सा भी द्वार खुल जाए साक्षी का तो फिर बहुत कुछ और नहीं करना पड़ता। वह थोड़ा सा द्वार ही पुकारता है, और खींचता है और आदमी खिंचता चला जाता है।
जैसे कोई आदमी छत पर से कूदना चाहे, छत पर से कूद जाए और फिर पूछे कि अब मैं क्या करूं जमीन तक पहुंचने के लिए? तो हम कहेंगे कि अब कुछ भी करने की जरूरत नहीं, तुम कूद गए, अब बाकी काम जमीन कर लेगी। अब जमीन खींच लेगी, उसकी

कशिश, उसका गुरुत्वाकर्षण, ग्रेवीटेशन खींच लेगा। तुम छत पर से कूद गए बस, अब तुम्हारा काम खत्म, अब जमीन काम कर लेगी।
एक बार आदमी साक्षी में कूद जाए, फिर उसे खुद कुछ नहीं करना पड़ता। वह परमात्मा की जो कशिश है, वह जो ग्रेवीटेशन है, वह जो परमात्मा का जो गुरुत्वाकर्षण है, वह काम पूरा कर लेता है। जब तक हम सपने में खड़े हुए हैं, तब तक वह काम नहीं करता। जैसे ही हम सपने को तोड़ते हैं और कूदते हैं, वैसे ही परमात्मा खींचना शुरू कर देता है।
आदमी एक कदम चले परमात्मा की तरफ और परमात्मा हजार कदम चलता है। हम जरा से बढ़ें, वह हजार कदम बढ़ जाता है। हम जरा सा उसको पुकारें और उसकी पुकार हमारी तरफ हजार गुनी होकर शुरू हो जाती है।
लेकिन हम जरा से भी अपने सपने से नहीं हटते, बल्कि हम तो अपने सपने को मजबूत करते चले जाते हैं! कहीं सपना टूट न जाए, तो चारों तरफ से पत्थर की दीवार बना कर सपनों को सुरक्षित करते हैं! छोटा सपना देखने वाला बड़ा सपना देखना चाहता है। छोटा मिनिस्टर बड़ा मिनिस्टर होना चाहता है। वह जरा बड़ा सपना देखना चाहता है। छोटा झोपड़े वाला महल वाला सपना देखना चाहता है। झोपड़े का सपना जरा, जरा दुखद सपना है। महल का सपना जरा सुखद सपना है।
सभी दुखद सपने देखने वाले सुखद सपने देखना चाहते हैं! छोटे सपने देखने वाले बड़े सपने देखना चाहते हैं! जूनागढ़ में सपना देखने वाले दिल्ली में सोकर सपना देखना चाहते हैं! लेकिन सपने को देखते चले जाना चाहते हैं और मजबूत करते चले जाना चाहते हैं!
सपना जितना मजबूत होता है, उतने ही हम सत्य से दूर होते चले जाते हैं। सपने को तोड़ना है, मजबूत नहीं करना है। और हम सब सपने को मजबूत करने के सब उपाय करते हैं! और अगर कोई दूसरा हमारे सपने को तोड़ना चाहे तो भी हम नाराज हो जाते हैं!
इंग्लैंड के एक बहुत बड़े डाक्टर ने एक किताब लिखी है कैनेथ वॉकर ने और किताब एक फकीर को समर्पित की है। और समर्पण में, डेडिकेशन में जो शब्द लिखे हैं, वह मुझे बहुत प्यारे लगे। डेडिकेशन में, समर्पण में उसने लिखा है उस फकीर के लिए, गुरजिएफ के लिए वह समर्पण किया है। लिखा है--टू जॉर्ज गुरजिएफ, दि डिस्टर्बर ऑफ माई स्लीप; जॉर्ज गुरजिएफ के लिए समर्पित, उस आदमी के लिए--जिसने मेरी नींद तोड़ दी!
नींद तोड़ने वाले लोग हैं कुछ, लेकिन नींद तोड़ने वाला कभी प्रीतिकर नहीं मालूम पड़ता। नींद तोड़ने वाला बहुत दुश्मन मालूम पड़ता है। चूंकि हम अपने सपने में खोए हैं, नींद में देख रहे हैं। कोई आकर हमें झकझोरता है और जगाता है। तबीयत होती है कि मना करो इसे, रोको इसे। सपना हम देख रहे हैं, क्यों तोड़ते हो हमारी नींद को? क्यों तोड़ते हो हमारे सपनों को?
और इसलिए दुनिया में सपने तोड़ने वाले लोग कभी भी प्रीतिकर नहीं मालूम हुए। न बुद्ध, न सुकरात, न जीसस, कोई कभी प्रीतिकर नहीं मालूम पड़ता। हम अपने सपनों में खोए हैं--ये नासमझ लोग आकर जगाते हैं और हिलाते हैं और सपना तोड़ देते हैं!
लेकिन जिन्होंने सपने के बाहर की दुनिया देख ली है, उनके प्राणों में ऐसा लगता है कि काश, तुम भी अपनी नींद के बाहर आ जाओ और उसे जान लो, जो सत्य है। क्योंकि जिन्होंने सत्य नहीं जाना, उन्होंने जीवन भी नहीं जाना। और जिन्होंने सत्य नहीं जाना, उन्होंने केवल नींद में गंवा दिया अवसर को, उन्होंने केवल मूर्च्छा में खो दिया सब कुछ।
वे जो सोते हैं, खो देते हैं। और वे जो जागते हैं, केवल वे ही उपलब्ध कर पाते हैं जीवन की संपदा को, जीवन के सौंदर्य को, जीवन के शिवत्व को।
ये दो छोटे सूत्र स्मरण रखना आप। जीवन एक सपना है और मनुष्य को बनना
है एक साक्षी। क्योंकि जैसे ही वह साक्षी बना, सपना टूट जाता है और सपना टूटा, तब जो शेष रह जाता है--वही सत्य है।
सत्य की खोज के लिए ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए दस मिनट बैठेंगे। और फिर विदा होंगे।
ध्यान का अर्थ भी वही है--साक्षी।

सत्य की खोज
पांचवां प्रवचन

शून्य से सत्य की ओर
(27 फरवरी 1969 रात्रि)

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।
एक मित्र ने पूछा है, आत्मा दिखाई नहीं देती है और जो नहीं दिखाई देती, उसका इतना महत्व क्यों माना जाता है? और आप भी उसी न दिखाई पड़ने वाली आत्मा की बात क्यों कर रहे हैं?
वृक्ष दिखाई पड़ता है, जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं; जड़ें जमीन के भीतर छिपी होती हैं। लेकिन इस कारण नहीं दिखाई पड़ने वाली जड़ों का मूल्य कम नहीं हो जाता है। बल्कि जो वृक्ष दिखाई पड़ता है, वह उन्हीं जड़ों पर निर्भर होता है, जो दिखाई नहीं पड़तीं। और वृक्ष की ही देख-सम्हाल में जो समय गंवा देगा और जड़ों की फिकर नहीं करेगा, उसका वृक्ष सूख जाने वाला है। उस वृक्ष पर न पत्ते आएंगे, न फूल आएंगे, न फल लगेंगे। नहीं दिखाई पड़ने वाली जड़ों में ही वृक्ष के प्राण छिपे हैं।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह छिपा हुआ है। जो प्रकट होता है, वह ऊपर की खोल है। जो अप्रकट रह जाता है, वह भीतर का प्राण है।
शरीर दिखाई पड़ता है, क्योंकि शरीर ऊपर की खोल है। वह नहीं दिखाई पड़ता,
जो शरीर के भीतर है। लेकिन इस कारण नहीं दिखाई पड़ने वाले का मूल्य कम नहीं हो जाता। बल्कि नहीं दिखाई पड़ता है, इसलिए उसकी खोज और भी ज्यादा जरूरी हो जाती है।
कहीं ऐसा न हो जाए कि जो दिखाई पड़ता है, हम उसी को सत्य मान कर समाप्त
हो जाएं। कहीं ऐसी भूल न हो जाए कि जो दिखाई पड़ता है, हम उसी को सब कुछ मानकर रुक जाएं। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी है। नहीं दिखाई पड़ने का कुल अर्थ इतना है कि सामान्य आंखों से नहीं दिखाई पड़ता है। लेकिन जो थोड़ी जो अंतर्दृष्टि पैदा करें, विवेक पैदा करें, समझ पैदा करें, उन्हें वह भी दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।
विचार आपके भीतर चलते हैं। अगर आपके सिर को तोड़ा जाए और आपके सिर की नसों को काटा जाए तो उनमें विचार कहीं भी नहीं मिलेंगे। अगर विज्ञान की परीक्षा-शाला में मस्तिष्क को काट-पीट करके जांच-परख की जाए तो विचार कहीं भी नहीं मिलेंगे। और वैज्ञानिक कह देगा कि विचार कहीं भी खोजने से नहीं मिलते। लेकिन हम सब जानते हैं कि विचार हैं। विचार दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन हमें उनका अनुभव होता है। हम किसी दूसरे को भी उन्हें बता नहीं सकते हैं, लेकिन हम भीतर जानते हैं कि वे हैं।
लेकिन प्रयोगशाला में वे नहीं पकड़े जा सकेंगे। इससे उनका न होना सिद्ध नहीं होता, इससे केवल इतना सिद्ध होता है कि प्रयोगशाला में जो उपकरण उपयोग में लाया जा रहा है, वह बहुत स्थूल है और बहुत सूक्ष्म को नहीं पकड़ पाता है। वैसे अभी कुछ प्रयोग चलते हैं और ऐसा मालूम होता है कि शायद विचार को पकड़ने की भी क्षमता हम शीघ्र ही विकसित कर लेंगे।
अमेरिका के एक विश्वविद्यालय ने एक छोटा सा प्रयोग किया है। उसने सारी दुनिया के विचारशील लोगों को हैरानी में डाल दिया। एक आदमी को एक बहुत बड़े संवेदनशील कैमरे के सामने बिठा कर उस व्यक्ति से कहा गया कि तुम किसी एक चीज पर बहुत तीव्रता से विचार करो। उस कैमरे में जो फिल्म लगाई गई थी, वह बहुत सेंसिटिव, बहुत संवेदनशील थी। और इस बात की आशा की गई थी कि अगर बहुत तीव्रता से एक विचार किया जाए तो शायद उस विचार की प्रतिछवि को कैमरे की फिल्म पकड़ ले। उस आदमी ने बहुत तीव्रता से एक विचार किया, एक छुरी के ऊपर विचार किया। सारे मन को केंद्रित कर दिया और बड़ी हैरानी की बात है, कैमरे की फिल्म में छुरी की आकृति पकड़ी जा सकी! वे जो मन में विचार की सूम तरंगें थीं, वे भी संवेदनशील कैमरे में पकड़ी जा सकीं! अब तक विचार नहीं देखा गया था। लेकिन विचार की पहली तस्वीर पकड़ी जा सकी।

सोवियत रूस में एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक है फयादेव। और रूस जैसे मुल्क में जो कि सूक्ष्मतम चीजों पर बहुत आस्था नहीं रखते हैं, फयादेव ने एक प्रयोग किया--एक हजार मील दूर तक विचार के संप्रेषण का! फयादेव ने मास्को में बैठ कर तिफलिस नगर में एक हजार मील दूर तक विचार की धारा को संवादित किया, बिना किसी यंत्र के माध्यम से! तिफलिस के एक बगीचे में दस नंबर की सीट के आस-पास कुछ लोग मौजूद हैं, छिपे हुए। मित्रों ने फोन से खबर दी फयादेव को मास्को में कि दस नंबर की सीट पर एक आदमी बैठा है। आप मास्को से विचार भेज कर उस आदमी को सुला सकते हों तो सुला दें।
फयादेव ने मास्को में बैठ कर ध्यान केंद्रित किया और उस आदमी को नींद
के सुझाव भेजे--सो जाओ, सो जाओ। एक हजार मील दूर सिर्फ मन से! वह आदमी तीन मिनट के भीतर सो गया!
लेकिन, यह भी हो सकता है, वह आदमी थका-मांदा हो और उसको नींद लग गई हो।
जो मित्र छिपे थे, उन्होंने फोन से खबर दी कि आदमी तो सो गया है, लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। आप अगर पांच मिनट के भीतर ठीक उसे वापस नींद से उठा दें तो हम सोच सकते हैं कि आपके विचारों से वह प्रभावित हुआ है। फयादेव ने फिर उसे सुझाव भेजे कि ठीक पांच मिनट के भीतर तुम उठ जाओ--उठ जाओ, उठ जाओ। एक हजार मील दूर सोए उस आदमी ने पांच मिनट के बाद आंखें खोल ही दीं और चौंक कर चारों तरफ देखा, जैसे किसी ने उसे पुकारा! जो मित्र छिपे थे, उन्होंने उस आदमी से आकर पूछा कि आप, इस तरह चौंक कर क्यों देख रहे हैं? उस आदमी ने कहाः मैं बहुत हैरान हूं। मैं अचानक यहां आकर बैठा और मुझे पहले ऐसा मालूम पड़ा कि कोई मुझसे कह रहा है कि सो जाओ, सो जाओ, सो जाओ! मैंने सोचा कि शायद मैं थका-मांदा हूं, मेरा मन ही मुझसे कहता है कि सो जाओ और मैं सो गया। लेकिन फिर अभी-अभी मुझे जोर से सुनाई पड़ने लगा--उठ जाओ, उठ जाओ; पांच मिनट के भीतर उठ जाओ! मैं बहुत हैरान हूं कि यह कौन बोल रहा है? फयादेव ने और भी प्रयोग किए। और जो विचार दिखाई नहीं पड़ता, उसके संप्रेषण के वैज्ञानिक प्रमाण दिए!
विचार दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन विचार है। आत्मा और भी दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन वह भी है। और जो ध्यान की गहराइयों में उतरते हैं, उन्हें वह आत्मा भी एक अर्थों में दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। वह भी दिखाई पड़ सकती है। जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं, लेकिन गड्ढा खोदा जाए तो चारों तरफ की जड़ें भी दिखाई पड़ सकती हैं। आत्मा दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन जो आदमी शरीर के भीतर थोड़े गड्ढे खोदने की कोशिश करता है और शरीर से भिन्न वह जो चेतना है, उसे पृथक करने की कोशिश करता है, उसे वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। जैसे वृक्ष के चारों तरफ गड्ढा खोदने पर मिट्टी अलग हो जाएगी और जड़ें अलग दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी।
एक मुसलमान फकीर था, शेख फरीद। एक गांव में ठहरा हुआ था। न मालूम कितने लोग उसके चरणों के दर्शन करने आते थे। एक आदमी ने शेख फरीद से पूछा, मैंने सुना है कि जब जीसस को सूली दी गई तो वे मुस्कुराते रहे! यह कैसे हो सकता है कि एक आदमी को सूली दी जा रही हो और वह मुस्कुराता रहे? और उस आदमी ने कहा कि मैंने सुना है कि जब मंसूर के हाथ-पैर काटे गए, तब वह हंस रहा था। यह असंभव मालूम पड़ता है। मंसूर की आंखें फोड़ दी गईं और उसके चेहरे पर दुख का जरा सा भी भाव न आया, यह कैसे हो सकता है?
फरीद ने पास में पड़े हुए एक नारियल को उठा लिया, जो लोग उसके चरणों में चढ़ा गए थे। उस नारियल को उस मित्र को दिया और कहा कि जरा जाकर इसे फोड़ लाओ। उस आदमी ने कहा कि मेरे सवाल का जवाब?
फरीद ने कहा कि वह जवाब ही मैं दे रहा हूं। यह नारियल देखते हो, कैसा है? नारियल कच्चा है? उस मित्र ने कहाः नारियल कच्चा है। फरीद ने कहा कि इसे फोड़ कर इसके भीतर की गिरी को साबित बचा कर ला सकते हो? उस आदमी ने कहाः थोड़ा मुश्किल है, कच्चा है नारियल, खोल और गिरी दोनों जुड़े हुए हैं। खोल को तोडूंगा तो गिरी भी टूट जाएगी।
फरीद ने कहाः छोड़ो इस नारियल को। एक दूसरा नारियल सूखा उसे उठा कर दिया और कहा कि इसे देखते हो? उस आदमी ने कहाः इसकी गिरी बचा कर लाई जा सकती है। साबित है यह नारियल, सूखा है।

फरीद ने कहाः लेकिन सूखे नारियल की गिरी को क्यों साबित बचाया जा सकता है?
उस आदमी ने कहाः बात साफ है। नारियल की खोल और गिरी दोनों अलग हो गई हैं। दोनों के बीच फासला है। ऊपर की खोल तोड़ी जा सकती है। भीतर की गिरी साफ बच जाएगी।
तो फरीद ने कहा कि बस तेरे सवाल का जवाब हो गया। कुछ लोग हैं, जो शरीर
की खोल से जुड़े रहते हैं। शरीर को चोट पहुंचती है तो उनको भी चोट पहुंच जाती है। कुछ लोग जो शरीर की खोल को अपने से थोड़ा फासले पर कर लेते हैं, उनके शरीर को काट दिया जाता है तो भीतर कोई पीड़ा, कोई दुख नहीं होता। वह जीसस जो था, वह मंसूर जो था, वह सूखा हुआ नारियल था। और तू गीला नारियल है, यही मैं तुझसे कहना चाहता हूं।
शरीर ही दिखाई पड़ता है। क्योंकि वह जो भीतर है, इतना जुड़ा हुआ है, इतना इकट्ठा जुड़ा हुआ है कि हमें पता ही नहीं। अगर हम थोड़ा दोनों को फासले पर करके देख सकें तो वह जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी दिखाई पड़ सकता है।
और रह गई यह बात कि उसको इतना मूल्य क्यों दिया जाता है? उसका ही मूल्य है, इसलिए दिया जाता है। शरीर का कोई भी मूल्य नहीं है। वस्त्रों का क्या मूल्य हो सकता है? स्थायी का मूल्य है, थोड़ी देर का मूल्य नहीं है। वस्त्रों का मूल्य वही नहीं है, जो पहनने वाले का है। शरीर का भी वही मूल्य नहीं, जो शरीर के भीतर निवास करने वाले का है। न जाने कितने शरीर उस भीतर के निवासी ने ग्रहण किए हैं। और न मालूम कितने शरीर वह छोड़ चुका! उसकी यात्रा बहुत लंबी है।
लेकिन हम उसे नहीं पहचानते हैं, हम वस्त्रों को ही पहचानते हैं, और वस्त्रों को ही सब-कुछ समझ लेते हैं! जो जानते हैं, वे कहेंगे कि मूल्य इसका ही है, जो भीतर छिपा है, वही है असली सत्य। जो बाहर दिखाई पड़ रहा है; वह खोल है, बदल जाएगी। और रोज बदल जाती है।
शायद आपको पता न हो, जिस शरीर को लेकर बचपन में आप पैदा हुए, क्या वही शरीर आपके पास है? मां के पेट से जिस छोटे से बीजांकुर का जन्म हुआ था, वही आप हैं? वह जरा सा टुकड़ा, जरा सा सेल्स का जोड़, क्या दूरबीन से भी दिखाई पड़ेगा कि वही आप हैं? कहां है वह शरीर, जो के मां पेट में आपका था? और जब आप पैदा हुए थे, और अब आप वही हैं?
शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है, जैसे गंगा प्रतिक्षण बह रही है। शरीर प्रतिक्षण बदल रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सात वर्ष में पूरे शरीर का सब-कुछ बदल जाता है, सब नया हो जाता है। सत्तर साल आदमी जीता है, दस बार शरीर बदल जाता है। शरीर पूरे वक्त बह रहा है, शरीर एक बहाव है।
लेकिन भीतर कुछ है, जो नहीं बह रहा है। भीतर कुछ है, जो वही है; जो कल था, जो परसों था, जो कल भी होगा और परसों भी होगा। आप बच्चे थे, जवान हो गए। लेकिन क्या आप बदल गए हैं? अगर आप ही बदल गए होते तो यह ख्याल ही पैदा होना मुश्किल था कि मैं कभी बच्चा था। मैं बच्चा था इस बात की स्मृति--इस बात का सबूत और गवाह है कि मैं "मैं" ही था। जब बच्चा था, तब शरीर को मैं जानता था कि बच्चा है और जवान हुआ तो जानता हूं, कल बूढ़ा हो जाऊंगा तो जानूंगा। जो और भी गहराई से जानते हैं, वे मरते क्षण में भी जानते हैं कि मैं वही हूं, शरीर मर रहा है।
सिकंदर हिंदुस्तान से लौटा। जब वह हिंदुस्तान की तरफ आया था तो उसके मित्रों ने यूनान में उससे कहा था कि हिंदुस्तान से बहुत चीजें लाओगे, एक संन्यासी भी ले आना! संन्यासी हिंदुस्तान में ही पाए जाते हैं बहुत दिनों से! हिंदुस्तान के बाहर तो सब एक्सपोर्टेड हैं--हिंदुस्तान से गए हुए संन्यासी हैं, या यहां से गई हुई हवाएं हैं, या यहां से गए हुए विचार-बीज हैं। सिकंदर के मित्रों ने कहा था, एक संन्यासी को भी ले आना! हम देखना चाहते हैं, संन्यासी कैसा होता है?
सिकंदर सब लूट कर जब वापस लौटता था, तब पंजाब के एक गांव में ठहरा। उसे ख्याल आया, उसने पुछवाया गांव में कि खबर करो कोई संन्यासी यहां मिल जाए तो मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहता हूं शाही सम्मान के साथ।
गांव के लोगों ने कहाः एक संन्यासी है, लेकिन ले जाना बहुत मुश्किल है।

सिकंदर ने कहाः इसकी तुम फिकर मत करो। एक साधारण संन्यासी को, एक फकीर
को ले जाने में मुझे क्या मुश्किल हो सकती है? मैं ले जाऊंगा, क्या ताकत हो सकती है एक गरीब संन्यासी की?
उस गांव के लोग हंसने लगे। उन्होंने कहाः शायद आपको पता नहीं कि संन्यासी की क्या ताकत होती है? संन्यासी को आप नहीं ले जा सकेंगे। संन्यासी को मार डालना आसान है, लेकिन संन्यासी को इंच भर हिलाना मुश्किल है।
सिकंदर की कुछ समझ में नहीं पड़ा। वह तलवार का विश्वासी, उसे क्या यह
सब बात समझ में पड़ती? तलवार के विश्वासियों को संन्यासी कभी समझ में नहीं आता और कभी नहीं आएगा। सिकंदर तलवार नंगी लेकर उस संन्यासी की खोज में गया नदी के पास। उसके दो सिपाहियों ने जाकर पहले खबर की उस संन्यासी को कि महान सिकंदर आपसे मिलने आ रहा है।
उस संन्यासी ने कहाः महान सिकंदर! क्या वह खुद भी अपने को महान समझता है?
उन सिपाहियों ने कहाः निश्चित, वह यही सिद्ध करने निकला है दुनिया में कि मैं महान हूं।
वह संन्यासी हंसने लगा। उसने कहाः उस पागल से कह देना, महान कभी अपने
को महान सिद्ध करने नहीं निकलते। और जो महान सिद्ध करने निकलता है, वह यह जानता है कि वह छोटा आदमी है, इसलिए महान सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। सिकंदर सुन कर क्रोध से भर गया। उसने तलवार खींच ली और उसने कहा कि मेरे साथ चलना है तुम्हें, मैं आज्ञा देता हूं।
संन्यासी ने कहाः पागल हो गए हो? हमने किसी की भी आज्ञा मानना बंद कर दिया है, इसलिए तो हम संन्यासी हैं। हम किसी की आज्ञा नहीं मानते। आज्ञा जो मानते हैं, वे और लोग हैं। हम अपनी मौज से जीते हैं। जैसे हवाएं अपनी मौज से चलती हैं, ऐसे ही हम अपनी मौज से चलते हैं। हम पर आज्ञाएं नहीं चलती हैं। तुम्हें संन्यासियों से बात करने का ढंग नहीं मालूम!
सिकंदर ने कहा कि मैं यह सुनने को राजी नहीं हूं। मैंने कभी अपनी आज्ञा का उल्लंघन नहीं सुना। आज्ञा के टूटने का एक ही मतलब होगा। यह तलवार तुम्हारी गर्दन को अलग कर देगी।
उस संन्यासी ने कहाः पागल, तुझे पता नहीं कि जिस गर्दन को तू अलग करने
की बात कर रहा है, उससे हम बहुत पहले से अलग हैं, ऐसा जान चुके हैं। और इसलिए अब उसे हमसे अलग करना, न करना सब बराबर है। अगर तू गर्दन काटेगा तो जिस तरह तू देखेगा कि गर्दन गिर गई जमीन पर, उसी तरह हम भी देखेंगे, कि गर्दन गिर गई जमीन पर! हम भी देखेंगे, तुम भी देखोगे। लेकिन इस ख्याल में मत रहना कि तुम मुझे काट दोगे। तुम जिसे काट सकोगे, वह मैं नहीं हूं। और यही तो, यही अनुभव करने के लिए तो, इस जीवन की खोज में निकला था। वह अनुभव पूरा हो गया।
सिकंदर ने कहा यूनान में जाकर कि एक आदमी मिला था, जिसे लोग संन्यासी कहते थे। लेकिन उस पर मेरा कोई बस न चल सका, क्योंकि वह आदमी मरने से नहीं डरता था!
और जो मरने से नहीं डरता, उस पर किसी का कोई भी बस नहीं चल सकता। हम मरने से डरते हैं, इसलिए बस चल जाता है। पर हम मरने से डरते क्यों है? हम मरने से डरते इसलिए हैं कि जो हमें दिखाई पड़ता है, उसी को हम सब समझ लेते हैं। वह मरणधर्मा है, इसलिए मरने से डर लगता है।
लेकिन जो उसको खोज लेते हैं, जो नहीं दिखाई पड़ता, वह जो अमृत है, वे मृत्यु के ऊपर उठ जाते हैं।
उसका मूल्य क्यों है--पूछते हो? उसका मूल्य इसलिए है कि वही जीवन है, वही अमृत है, वही सत्य है। इस शरीर का कोई भी मूल्य नहीं है। इस शरीर का उतना ही मूल्य है, जितना एक मकान के मालिक का होता है। लेकिन मकान के मालिक? मकान के मालिक के मूल्य की बात अलग है। लेकिन कई ऐसे नासमझ हैं कि मकान के मालिक को बेच देते हैं और मकान को बचा लेते हैं! कई ऐसे नासमझ हैं कि मकान को सब समझ लेते हैं और खुद को भूल जाते हैं!
स्वामी राम जापान गए हुए थे। टोकियो के एक बहुत बड़े मकान में आग लग गई थी। स्वामी राम उस रास्ते से गुजरते थे। वह भी उस भीड़ में खड़े हो गए। न

मालूम कितना कीमती महल आग की लपटों में जल रहा था। सैकड़ों लोग महल के भीतर जाकर सामान बाहर ला रहे थे। महल का मालिक बाहर खड़ा हुआ था। बेहोश हालत में था, लोग उसको सम्हाले हुए थे। तिजोरियां बाहर निकाली जा रही थीं। कीमती वस्त्र बाहर निकाले जा रहे थे। कीमती फर्नीचर बाहर निकाला जा रहा था। बहुमूल्य चित्र बाहर निकाले जा रहे थे। फिर सारा सामान बाहर निकल गया। अंदर से लोगों ने आकर उस मकान के मालिक से कहा और कुछ बचा हो तो हमें बता दें, एक बार और मकान के भीतर जाया जा सकता है। फिर लपटें पूरी तरह पकड़ लेंगी। फिर भीतर जाना असंभव होगा। कोई बहुमूल्य चीज बची हो तो बता दें। मकान के मालिक ने कहाः मेरा इकलौता बेटा! जो इस सब सामान का मालिक है,
वह कहां है? लोगों ने कहाः भूल हो गई। हम सामान के बचाने में लग गए और मकान मालिक का इकलौता बेटा, जो कि सारे सामान का मालिक था, वह भीतर ही रह गया और जल गया! अब हम उसकी लाश लेकर आए हैं! अब हम रो रहे हैं कि हमने आपका सामान व्यर्थ बचाया, क्योंकि जिसके लिए वह सामान था, वही खत्म हो गया!
स्वामी राम ने अपनी डायरी में लिखा कि आज मैंने एक बड़ी अदभुत घटना देखी, लेकिन बड़ी सच्ची। मैंने आज एक मकान देखा, जिसमें मकान का मालिक जल गया और सामान बचा लिया गया! और मैं यह घटना देख कर इस नतीजे पर पहुंचा कि ऐसा ही सारी दुनिया में हो रहा है। हर आदमी मकान के मालिक को जलने दे रहा है और सामान को बचा रहा है! वह सामान दिखाई पड़ता है इसलिए, और मकान का मालिक दिखाई नहीं पड़ता है इसलिए।
लेकिन जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी है ही। और जो दिखाई पड़ता है, वह भी उसके ही सहारे है। जो नहीं दिखाई पड़ता, वही बुनियाद है। जो दिखाई पड़ता है, वह बुनियाद नहीं है। वह दिखाई पड़ने वाला भवन, न दिखाई पड़ने वाले के आधार पर खड़ा है। लेकिन यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह बुनियाद हो। हम तो सोचते हैं, जो दिखाई पड़ता है, वही बुनियाद होता है। लेकिन जिंदगी बड़ी पहेली है, यहां चीजें बड़ी उलटी हैं। इन उलटी चीजों से ही सारी चीजें बनी हैं।
एक पत्थर उठा कर आप देखते हैं, आपने कभी सोचा कि यह पत्थर उन चीजों से बना हुआ है, जो दिखाई नहीं पड़ती हैं! अभी जाकर वैज्ञानिक से पूछें। वह कहेगा, एटम दिखाई नहीं पड़ता है। और उसे पूछें पत्थर किससे बना है? वह कहेगा, पत्थर एटम से बना है, एटम के जोड़ से बना है।
बड़ा पागल है यह आदमी। जब एटम दिखाई नहीं पड़ते, तब उनका जोड़ कैसे दिखाई
पड़ सकता है? कोई एटम दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन यह पत्थर सिर्फ एटम का जोड़ है। यह जो दिखाई पड़ रहा है, यह भी सब न दिखाई पड़ने वाले अणुओं का जोड़ है! कोई अणु दिखाई नहीं पड़ता और उन न दिखाई पड़ने वाले अणुओं का जोड़ दिखाई पड़ रहा है!
कभी आपने ख्याल किया होली के वक्त। अभी होली करीब आती है। कुछ बच्चे
आग लगा कर जोर से हाथ को घुमाएंगे। आपने देखा एक लकड़ी में आग लगा कर? कोई जोर से घुमाए तो एक आग का वृत्त, एक फायर सर्कल बन जाता है। एक मशाल को हाथ में लेकर जोर से घुमाइए तो एक चक्कर दिखाई पड़ने लगता है। वह चक्कर है कहीं? नहीं सिर्फ दिखाई पड़ता है! है तो सिर्फ एक मशाल, जो जोर से घूमती है और चक्कर बन जाती है। वह चक्कर है नहीं, लेकिन दिखाई पड़ता है! वह चक्कर इसलिए दिखाई पड़ता है कि मशाल इतने जोरों से घूम रही है कि हमें दिखाई नहीं पड़ता कि बीच में खाली जगह भी निकल रही है। मशाल बहुत तेजी से घूमने की वजह से एक चक्र बन जाता है।
वैज्ञानिक कहते हैं, एटम इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि वे दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन उनके तेजी से घूमने की वजह से हमें पत्थर दिखाई पड़ता है। सारी दुनिया दिखाई पड़ रही है। और जिन चीजों से मिल कर बनी है, वे दिखाई पड़ने वाली चीजें नहीं हैं!
आत्मा ही नहीं, जगत की सारी चीजें न दिखाई पड़ने वाली चीजों से बनी हैं
और दिखाई पड़ रही हैं! यह चमत्कार है।
पदार्थ हम उसको कहते हैं, जो दिखाई पड़ता है। शायद, आपको ख्याल न हो, अब
जो जानते हैं, वे कहते हैं, पदार्थ है ही नहीं, मैटर जैसी कोई भी चीज नहीं है!

नीत्शे ने कोई साठ-सत्तर साल पहले, अस्सी साल पहले यह कहा था--गॉड इ.ज डेड, ईश्वर मर गया। लेकिन ईश्वर तो नहीं मरा। अब पूरा विज्ञान यही कहता है मैटर इ.ज डेड, पदार्थ मर गया! पदार्थ है ही नहीं, मैटर जैसी कोई चीज दुनिया में नहीं है! जो भी दिखाई पड़ता है, वह भ्रम है। लेकिन हम कहेंगे, जो हमें दिखाई पड़ता है, वह कैसे भ्रम हो सकता है?
उस आकाश की तरफ देखें, वहां तारे दिखाई पड़ रहे हैं आपको, और आपको शायद पता नहीं होगा कि जहां यह आपको तारा दिखाई पड़ रहा है, वहां कोई भी तारा नहीं है। वह सिर्फ दिखाई पड़ रहा है। आप कहेंगे, अगर नहीं है तो दिखाई कैसे पड़ रहा है? वह दिखाई इसलिए पड़ रहा है कि वहां तारा कभी था। जिस जगह आपको तारा दिखाई पड़ रहा है, वहां साठ साल पहले तारा रहा होगा। साठ साल में बहुत आगे बढ़ गया। साठ साल पहले उसकी चली हुई किरण अब हमारी जमीन पर पहुंच पाई है! इसलिए हमको वहां दिखाई पड़ रहा है। हो सकता है इस बीच वह खत्म हो गया हो, हो भी न, लेकिन वह दिखाई पड़ रहा है! वह साठ साल तक आगे भी दिखाई पड़ता रहेगा। सारा आकाश झूठा है। जो तारे दिखाई पड़ते हैं, वे कोई भी वहां नहीं हैं!
और जहां वे हैं, वहां आपको दिखाई नहीं पड़ रहे हैं! और जहां हैं, वहां कभी दिखाई नहीं पड़ेंगे! और सदा वहीं दिखाई पड़ते रहेंगे, जहां वे नहीं हैं! क्योंकि उनसे किरणों के आने में वर्षों लग जाते हैं।
जिंदगी बहुत अदभुत है। यह जो पदार्थ हमें दिखाई पड़ता है, वह भी नहीं है। यह जो शरीर हमें दिखाई पड़ता है, बहुत ठोस मालूम पड़ता है, यह भी न दिखाई पड़ने वाले अणुओं का जोड़ है!
और इसके भीतर सबसे महत्वपूर्ण और सबसे रहस्य की जो बात छिपी है, वह है चेतना, वह है कांशसनेस, जिसके ऊपर सारा खेल है; वह बिल्कुल ही दिखाई नहीं पड़ती!
और उसकी जितनी खोज कीजिएगा, जितनी उसकी खोज में जाइएगा, वह उतनी ही पीछे सरकती चली जाती है! क्योंकि कौन उसको खोजेगा? आप ही तो वही हैं।
अगर एक चिमटे से हम किसी भी चीज को पकड़ना चाहें तो पकड़ लेंगे। लेकिन उसी चिमटे से अगर उसी चिमटे को पकड़ने की कोशिश की तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी। फिर वह पकड़ में नहीं आ सकेगी। क्योंकि चिमटा खुद अपने को कैसे पकड़ सकता है? और जब आत्मा की खोज में कोई जाता है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। क्योंकि आत्मा और सबको देख सकती है, खुद को कैसे देख सकती है? और इसलिए कठिनाई शुरू हो जाती है।
लेकिन आत्मा को अनुभव किया जा सकता है। उसे अनुभव किया गया है, उसे आज
भी अनुभव किया जा सकता है। लेकिन उसे अनुभव वे ही करेंगे, जो देखने पर न रुक जाएं, दृश्य पर न रुक जाएं और अदृश्य की खोज में संलग्न हों।
इन तीन दिनों में हमने उसी सत्य की खोज के संबंध में कुछ सूचक, कुछ संकेतों पर, कुछ सूत्रों पर बात की है। उसका मूल्य है, जो दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए उसकी बात की जाती है। जिस दिन यह शरीर गिर जाएगा, उस दिन वही बच रहता है, जो नहीं दिखाई पड़ता है। इसलिए उसकी बात करना बहुत जरूरी है, बहुत उपादेय है। उसकी खोज करना भी बहुत जरूरी है, बहुत उपादेय है। और धन्य हैं वे लोग, जो उसकी खोज में संलग्न हो जाते हैं। और अभागे हैं वे लोग, जो दिखाई पड़ता है, उसी पर रुक जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं!
एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैं संयम का विरोधी हूं?
मैं निश्चित ही संयम का विरोधी हूं, उस संयम का जो आदमी जबरदस्ती अपने ऊपर थोप लेता है। मैं संयम का बहुत पक्षपाती हूं, लेकिन उस संयम का जो समझ के परिणामस्वरूप मनुष्य को सहज उपलब्ध होता है। इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना उपयोगी है। एक तो ऐसा संयम है, जो आदमी जबरदस्ती अपने ऊपर थोपता है। भीतर कुछ होता है, ऊपर से कुछ और हो जाता है। और अधिकतर संयमी इसी तरह के लोग होते हैं। भीतर हिंसा होती है, ऊपर से आदमी अहिंसक हो जाता है--पानी छान कर पीता है, रात खाना नहीं खाता है! ये सारे इंतजाम कर लेता है। और सोचता है कि मैं अहिंसक हो गया! भीतर हिंसा की लपटें, भीतर हिंसा की आग जलती रहती है, भीतर वासना सुलगती रहती है--ऊपर ब्रह्मचर्य और संयम के पाठ लेकर बैठ जाता है! भीतर क्रोध जलता है, ऊपर मुस्कुराहटें सीख लेता है! भीतर कुछ होता है, ऊपर बिल्कुल उलटा हो जाता है। ऐसा संयम बहुत खतरनाक है। और ऐसा संयम अपने आपको ज्वालामुखी पर बिठाने के समान है।

मैंने सुना है, एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी था। वह इतना क्रोधी
था कि उसने अंततः अपने क्रोध में अपनी पत्नी को धक्का दे दिया एक कुएं में। उसकी पत्नी गिर गई और मर गई! तब उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ।
सभी क्रोधियों को पश्चात्ताप होता है। लेकिन पश्चात्ताप से क्रोधियों को कोई अंतर नहीं पड़ता। वे फिर तय कर लेते हैं कि अब ऐसा नहीं करेंगे। और कल फिर वही करते हैं, जो उन्होंने तय किया था कि नहीं करेंगे! पश्चात्ताप में वह बहुत दुखी हो उठा। गांव में एक संन्यासी, एक मुनि
आए थे। मित्रों ने उसे सलाह दी कि तुम इस तरह नहीं बदलोगे। वह मुनि आए हैं, उनके पास जाओ। शायद वह कोई रास्ता बता सकें। वह क्रोधी आदमी पश्चात्ताप के क्षणों में मुनि के पास जाकर, हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं क्रोध से जल रहा हूं। मैंने अपनी पत्नी को धक्का दे दिया। अब मैं बहुत घबरा गया हूं। मैं कैसे अपने क्रोध पर विजय पा सकता हूं?
मुनि ने कहाः साधारण गृहस्थ रहते हुए क्रोध को जीतना मुश्किल है! इसके लिए संयम की साधना करनी पड़ेगी, संन्यास लेना पड़ेगा। अगर तुम दीक्षा ले लो तो कुछ हो सकता है। वे मुनि नग्न थे।
उस आदमी ने फिर आव देखा न ताव, वस्त्र फेंक कर नग्न खड़ा हो गया! उसने कहा कि दीक्षा दें, इसी वक्त दीक्षा दें!
मुनि बहुत चकित हुए! मुनि ने कहाः बहुत लोग मैंने देखे हैं, इतना संकल्पवान आदमी, इतना विल पावर का आदमी मैंने नहीं देखा! संकल्प कुछ भी न था। वह आदमी क्रोधी था। जैसे एक क्षण में उसने धक्का देकर पत्नी को कुएं में गिरा दिया था, उसी तरह एक धक्का देकर अपने को दीक्षा में गिरा दिया। वही क्रोध था, कोई फर्क न था दोनों बातों में। लेकिन मुनि समझे कि बहुत संकल्पवान है!
क्रोधी लोग अक्सर तपस्वी हो जाते हैं, क्योंकि क्रोध बड़ी तपश्चर्या करवा सकता है। क्रोध बड़ी खतरनाक ताकत है। क्रोध दूसरे को भी सता सकता है, क्रोध खुद को भी सता सकता है। क्रोध को मजा सताने में आता है। सौ में से अट्ठानबे प्रतिशत तपस्वी और संन्यासी लोग क्रोधी लोग होते हैं। और जो क्रोध दूसरों को कष्ट देता है, उस क्रोध को अपनी तरफ मोड़ लेते हैं और खुद को कष्ट देना शुरू कर लेते हैं!
दुनिया में दो तरह के सताने वाले लोग होते हैं। दो तरह की वायलेंस होती है, हिंसा होती है। एक हिंसा होती है दूसरे के प्रति, जिसको अंग्रेजी में सैडिज्म कहते हैं--पर-पीड़न! और एक हिंसा होती है, जिसे अंग्रेजी में मैसोचिज्म कहते हैं--आत्मपीड़न! खुद को सताने में भी उतना ही मजा आने लगता है!
उस आदमी ने वस्त्र फेंक दिए और खड़े होकर कहाः मैं दीक्षा लेने को तैयार हूं। मुनि ने कहाः तू बड़ा धन्यभागी है। तूने इतना महान कार्य किया कि एक क्षण में तूने संकल्प ले लिया!
और दूसरे दिन से उस आदमी के महान संकल्प के अनेक प्रमाण मिलने शुरू हो गए। वह इतनी कठिन तपश्चर्या में लग गया कि मुनि के सारे शिष्य पीछे पड़ गए। वह सबसे आगे निकल गया, जो सबसे पीछे आया था। उसके गुरु ने उसे मुनि शांतिनाथ का नाम दिया, क्योंकि उसने क्रोध पर विजय करने की साधना शुरू की थी।
वर्ष बीतते-बीतते वह आदमी जगत में ख्याति प्राप्त हो गया। जगह-जगह से उसकी पूजा के समाचार आने लगे। जब दूसरे साधु छाया में बैठते तो वह धूप में खड़ा रहता! जब दूसरे साधु बंधे हुए रास्तों पर चलते तो वह कांटों से भरी पगडंडियों पर चलता! जब दूसरे साधु दिन में एक बार भोजन करते, वह तीन दिन में एक बार भोजन लेता! उसने सारे शरीर को सुखा कर कांटा कर दिया! फिर जितना आदर मिलने लगा, उतना ही वह क्रोधी आदमी अपना दुश्मन होने लगा! उसने हजार-हजार तरकीबें निकाली खुद को सताने की! उसकी ख्याति बढ़ती चली गई।
वह देश की राजधानी में पहुंचा। देश की राजधानी में उसकी ख्याति पहुंच
गई थी। उसका एक मित्र राजधानी में रहता था। वह बहुत चकित हुआ यह जान कर कि उसका क्रोधी दोस्त साधु हो गया है, मुनि शांतिनाथ हो गया है! यह कैसे हो गया! यह उसे विश्वास नहीं पड़ा। वह आदमी अपने मित्र को, संन्यासी को देखने आया।

संन्यासी बड़े मंच पर आसीन था। हजारों लोग उसके दर्शन करने को आए थे!
जो आदमी बड़े मंचों पर आसीन हो जाते हैं, वे नीचे बैठने वालों को नहीं पहचानते! वह मंच चाहे मिनिस्टर का हो और चाहे संन्यासी का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मंच ऊंचा होना चाहिए। फिर कोई किसी नीचे वाले को नहीं पहचानता। इसी मजे के लिए कि किसी को पहचानना न पड़े, आदमी बड़े मंचों की यात्रा करता है! दुनिया उसको पहचाने और वह किसी को न पहचाने, यही तो मजा है अहंकार का।
मित्र को देख तो लिया संन्यासी ने, लेकिन पहचाना नहीं! मित्र को भी समझ में तो आ गया कि वह पहचान गया है, फिर भी पहचानना नहीं चाह रहा है! तभी उसे ख्याल आ गया कि मुश्किल है इस आदमी ने क्रोध जीता हो। क्योंकि क्रोध और अहंकार सगे भाई हैं। अगर एक आता है तो दूसरा अपने आप चला आता है।
वह मित्र पास आकर बैठ गया। और उसने कहा कि महाराज, आपका बड़ा नाम सुना है, आपकी बड़ी कीर्ति सुनी है, लेकिन मुझे पता नहीं कि आपका ठीक-ठीक नाम क्या है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपका क्या नाम है? मुनि को तो क्रोध आ गया, क्योंकि वह भलीभांति जानता है, वह मुझे बचपन से जानता है और अब नाम पूछने आया है!
उसने कहाः अखबार नहीं पढ़ते हो? रेडियो नहीं सुनते हो? मेरे नाम की सारे जगत में चर्चा है! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ, ठीक से सुन लो!
मित्र ने कहाः भगवान, आपने बड़ी कृपा की, जो नाम बता दिया। फिर मुनि कुछ दूसरी बातों में लग गए।
दो मिनट बाद उस मित्र ने कहा कि ठहरिए, ठहरिए मैं भूल गया, आपका नाम क्या है?
मुनि के भीतर क्रोध जग गया! कहाः आदमी हो या पागल, मेरा नाम मैंने अभी बताया था--मुनि शांतिनाथ।
मित्र ने कहाः धन्यवाद, आपने फिर बता दिया, मैं भूल गया था क्षमा करें। दो मिनट बाद दूसरी बात चली होगी कि उस आदमी ने फिर पैर को हाथ लगाया और कहा मुनि जी मैं भूल गया, नाम क्या है आपका?
मुनि ने अपना डंडा उठा लिया और कहा सिर तोड़ दूंगा! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ--बुद्धि है तेरे पास या नहीं?
उस मित्र ने कहाः सब अपनी जगह है महाराज। मेरे पास बुद्धि अपनी जगह है
और आपका क्रोध अपनी जगह है। मैं सिर्फ यही देखने आया था कि वह क्रोध चला गया या मौजूद है?
यह सारा संयम उस क्रोध को भीतर दबाए हुए बैठा है। हिंसक, अहिंसक बन जाते हैं! क्रोधी क्षमावान दिखाई पड़ने लगते हैं! कभी ब्रह्मचर्य की धारणा कर लेते हैं! यह सब हो सकता है। लोभी त्यागी हो सकते हैं। लेकिन भीतर कोई अंतर नहीं पड़ता। ऊपर से थोपी गई बात, भीतर की आत्मा को रूपांतरित नहीं करती।
कोई भी क्रांति बाहर से भीतर की तरफ नहीं होती। सारी क्रांतियां भीतर
से बाहर की तरफ होती हैं। आत्मा बदल जाए तो आचरण बदल जाता है। लेकिन आचरण भर बदलने से आत्मा नहीं बदलती।
मैं उस संयम के विरोध में हूं, जो सिर्फ आचरण पर बल देता है। मैं उस संयम के पक्ष में हूं, जो आत्मा से जन्मता है और बाहर की तरफ फैलता है। इन दोनों की प्रक्रियाएं अलग हैं। बाहर से थोपा गया संयम हमेशा दमन, सप्रेशन का फल होता है। अगर भीतर हिंसा है तो उसको दबा दो, अगर भीतर क्रोध है तो उसको दबा दो। और दबा कर उससे उलटे को अपने ऊपर ले आओ। लेकिन वास्तविक संयम, जिसको मैं संयम कहता हूं, वह संयम दमन से नहीं आता। हिंसा के दमन से अहिंसा नहीं आती, बल्कि हिंसा की समझ से, हिंसा को समझने से, हिंसा को पहचानने से, भीतर की हिंसा की खोज करने से, हिंसा के प्रति जाग्रत होने से, धीरे-धीरे हिंसा विसर्जित होती है। और फिर जो शेष रह जाता है, उसका नाम अहिंसा है। दो तरह की अहिंसा हुई। हिंसा को भीतर दबा दो और अहिंसक हो जाओ। या हिंसा भीतर से क्षीण हो जाए और अहिंसा जन्मे।
लेकिन अब तक हजार वर्षों से आदमियों के ऊपर थोपने वाले संयम के पाठ पढ़ाए गए। इसलिए संयम के पाठ तो बहुत हैं, लेकिन जीवन में असंयम पाठों से बहुत ज्यादा है! संयम की हजारों वर्षों से चर्चा चलती है, लेकिन मनुष्य

संयमी नहीं हो पाया! जितनी चर्चा हुई है, उतना ही मनुष्य असंयमी होता चल गया है। यह क्या हुआ है? जिस देश में ब्रह्मचर्य की जितनी बात होगी, उस देश में कामुक व्यक्ति उतने ही अधिक होंगे। यह बड़ी हैरानी की बात है। ब्रह्मचर्य की इतनी बातचीत चले और आदमी सेक्सुअल होता चला जाए! इसके बीच कोई संबंध मालूम होता है। और वह संबंध यह है कि हम जिस चीज को दबाते हैं, वही चीज हमारे प्राणों में गहरी प्रविष्ट होकर बैठ जाती है।
दमन मुक्त नहीं करता, दमन बांध देता है।
किसी भी चीज को दबा कर देख लें और जिसको आप दबाएंगे, आप उसी के साथ बंध जाएंगे।
एक फकीर का मुझे स्मरण आता है। नसरुद्दीन नाम का एक फकीर हो गया है।
वह अपने घर से सांझ निकल रहा था किन्हीं मित्रों से मिलने। जाने को निकला ही घर के बाहर कि उसका एक मित्र आ गया और गले मिल गया। बीस वर्ष बाद वह मित्र आया था।
नसरुद्दीन ने कहा कि वर्षों बाद तुम आए हो, बहुत खुश हुआ तुम्हें मिल कर। लेकिन बड़ा दुख है, तुम्हें थोड़ी देर रुक जाना पड़ेगा। मैं अब किन्हीं से मिलने जा रहा हूं। मैं थोड़ा मिल आऊं, जल्दी ही आ जाऊंगा। फिर तुमसे बैठ कर घंटों बात करेंगे। बीस वर्ष बाद तुम मिले हो। कितनी बातें हो गईं, कितनी बातें करनी हैं।
इस बीच उस मित्र ने कहा, मुझे तो क्षण भर खोने की हिम्मत नहीं है। मैं
तो चाहता हूं कि तुम्हारे साथ ही चलूं। लेकिन वस्त्र मेरे सब गंदे हो गए हैं। तुम्हारे पास कोई ठीक कोट कुर्ता हो तो मैं डाल लूं और तुम्हारे साथ हो जाऊं।
फकीर ने रख छोड़ा था एक कोट, जिसे किसी सम्राट ने भेंट किया था। कोट था, पगड़ी थी, जूते थे। ताजे कपड़े थे, ले आया निकाल कर। बहुत कीमती कपड़े थे, खुद कभी नहीं पहने थे। इतने कीमती कपड़े थे कि पहनने की फकीर हिम्मत नहीं जुटा पाया था। प्रतीक्षा करता था कि कभी पहनूंगा, वह मौका ही नहीं आया। आज खुश हुआ कि चलो मित्र को पहनने के काम आ जाएंगे। मित्र को कपड़े दे दिए।
लेकिन जब मित्र ने कपड़े पहने तो फकीर के मन में ईर्ष्या पकड़ गई, इतने सुंदर कपड़े थे। और उस दिन सुंदर कपड़ों में वह मित्र बहुत सुंदर मालूम पड़ने लगा। उसके सामने नसरुद्दीन बिल्कुल नौकर दिखाई पड़ने लगा। खुद के ही कपड़े और आदमी नौकर हो जाए तो तकलीफ होगी। दूसरे के कपड़े हों, तब भी तकलीफ हो जाती है। यहां तो अपने ही कपड़े थे और उसके सामने ही नौकर दिखाई पड़ने लगे थे!
लेकिन मन को बहुत समझाया कि इन बातों में क्या रखा है। कपड़े अपने हुए
या उसके हुए। मित्र अपना है, कपड़ों में क्या रखा हुआ है? बहुत समझाया अपने मन को, जैसा संयमी लोग समझाते हैं। समझाने की बहुत कोशिश की कि सब बेकार बात है। रास्ते भर मित्र से बात करता रहा ऊपर-ऊपर और भीतर अपने को समझता रहा कि इसमें क्या रखा हुआ है? किसी ने अगर कपड़े पहन लिए तो हर्ज क्या है? लेकिन सारे रास्ते पर जिसकी भी नजर गई, मित्र के कपड़ों पर गई!
दुनिया तो कपड़ों को देखती है, आदमी को कोई देखता नहीं! जब भी किसी की नजर गई कपड़ों पर गई। नसरुद्दीन को किसी ने देखा ही नहीं! उस दिन रास्ते भर बड़ी तकलीफ हो गई, बड़ी पीड़ा हो गई।
फिर मित्र के घर गए। जहां मिलने गए थे, वहां जाकर कहा कि मेरे मित्र हैं, बहुत पुराने दोस्त हैं, बीस वर्षों बाद आए हैं, बहुत ही अच्छे आदमी हैं। और रह गए कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं! एक क्षण में यह बात निकल गई मुंह से कि कपड़े मेरे हैं! फिर बहुत दुखी हुआ। मित्र भी हैरान हुआ। जिसके घर गए थे, वे लोग भी चकित हुए कि कपड़ों की बात कहने की क्या जरूरत थी?
बाहर निकाल कर मित्र ने कहाः क्षमा करें, मैं अब आपके साथ नहीं जा सकूंगा। यह क्या अपमान किया मेरा? अगर यही था तो मैं अपने ही कपड़े पहने आता। वे गंदे थे, तब भी कम से कम अपने तो थे। यह बताने की क्या जरूरत थी कि कपड़े आपके हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि जबान धोखा दे गई।
जबान कभी धोखा नहीं देती है, ध्यान रखना। भीतर जो होता है, वह कभी भी जबान से निकल जाता है। जबान धोखा कभी नहीं देती, मन कभी धोखा नहीं देता है। भीतर दबा हो, वह कभी भी फूट जाता है। जैसे केटली में भाप दबा कर रख दी हो तो

केवल फूट सकती है। केटली धोखा नहीं देती, भाप निकलना चाहती है, केटली फूट सकती है।
मित्र ने कहा कि तुम कहते हो तो मान लेता हूं, लेकिन दूसरी जगह ध्यान रहे।
नसरुद्दीन ने कहाः बिल्कुल ध्यान है। न केवल ध्यान है, बल्कि मैं कहता हूं, ये कपड़े अब तुम्हारे ही हुए। मैं सदा के लिए ये कपड़े तुम्हीं को दिए देता हूं, अब कपड़े तुम्हारे ही हैं, मेरा सवाल ही न रहा।
दूसरे मित्र के घर गए। दूसरा मित्र, उसकी पत्नी जैसे ही बाहर आए, उनकी आंखें अटक गईं उस मित्र के कपड़ों पर! फिर नसरुद्दीन के मन में हुआ कि यह मैंने पागलपन कर दिया? कपड़े बिल्कुल ही दे दिए। अब कभी मौका नहीं मिलेगा इनको पहनने का, चूक गया। मित्र ने पूछा, कौन हैं आप?
नसरुद्दीन ने कहाः बहुत पुराने दोस्त हैं, बड़े प्यारे आदमी हैं, बीस वर्षों बाद मिले हैं। और रह गए कपड़े, कपड़े उन्हीं के हैं, मेरे नहीं हैं! लेकिन इसे कहने की क्या जरूरत थी? कपड़े जब किसी के होते हैं, तब कोई भी नहीं कहता कि उसी के हैं। फिर शक पैदा हो गया।
मित्र ने बाहर निकल कर कहाः क्षमा कर दो, अब मैं तुम्हारे साथ कदम नहीं रख सकता हूं। यह क्या पागलपन है?
नसरुद्दीन ने कहाः एक मौका और दो, नहीं तो जिंदगी भर के लिए मेरे मन में दुख रह जाएगा। भूल हो गई। शायद पिछली भूल के कारण ही यह भूल भी हो गई। पिछली बार मैंने कहा कि मेरे हैं तो मन में दुख समा गया और लगा कि अपने मित्र को यही बता दूं। शायद इससे ही यह भूल हो गई।
लेकिन भूल का कारण दूसरा था। भूल का कारण था दमन, भूल का कारण था सप्रेशन--दबा रहा था भीतर कि कपड़े! कपड़े कुछ भी नहीं है! और जिन चीजों को दबा रहा था, वे चीजें बाहर निकलने की कोशिश कर रही थीं।
तीसरे मित्र के घर, वह अब अपने को बिल्कुल संयम साध कर भीतर प्रवेश कर रहा है। भीतर कपड़े ही कपड़े उठ रहे हैं मन में! कपड़े ही कपड़े दिखाई पड़ रहे हैं! आंख खोलता है तो कपड़े हैं, आंख बंद करता है तो कपड़े हैं। अपने को सम्हाल रहा है। किसी को पता नहीं है, इस बेचारे के भीतर क्या हो रहा है! संयमी आदमी के भीतर क्या होता है, किसी को पता नहीं। संयमी आदमी बड़े खतरनाक होते हैं। जो बाहर नहीं दिखाई देता, वही उनके भीतर चलता रहता है! वह घबड़ा रहा है, परेशान हो रहा है। ऊपर से ठीक दिखाई पड़ रहा है, लेकिन भीतर वह बिल्कुल पागल हालत में है। उसे कपड़े ही दिखाई पड़ रहे हैं। पश्चात्ताप भी हो रहा है, दुख भी हो रहा है कि मैंने यह क्या किया। कपड़ों की बात नहीं करनी थी। कपड़ों की बात ही नहीं करनी है।
और तभी मित्र ने पूछाः कौन हैं आप?
फिर वही कपड़े सामने आ गए! कहा कि मेरे मित्र हैं और रह गए कपड़े--सो कपड़े
की कसम खा ली है, बात ही नहीं करनी है, किसी के भी हों!
यह दमित चित्त इसी तरह काम करता है। जिसको दबाता है, उसी से उलझ जाता है। किसी भी चीज को दबाएं, उसी से उलझ जाएंगे। चित्त रुग्ण हो जाता है, आब्सेशन पैदा हो जाता है।
संयम का क्या अर्थ है? संयम का अर्थ दमन नहीं है। लेकिन संयम का अर्थ दमन ही प्रचलित रहा है! और आज भी जब कोई संयम साधने जाता है तो दमन करने में लग जाता है, आत्म-दमन में लग जाता है! और जिन-जिन चीजों को दबाता है, उन्हीं-उन्हीं चीजों का रुग्ण आकर्षण सारे चित्त को पकड़ लेता है।
मैं एक साध्वी के साथ समुद्र-किनारे पर बैठा हुआ था। साध्वी आत्मा- परमात्मा की, मोक्ष की बातें कर रही थी! हम जिन चीजों की बातें करते हैं, अक्सर उनसे हमारा कोई संबंध नहीं होता। जिनसे हमारा संबंध होता है, उनकी हम शायद बात ही नहीं करते हैं। साध्वी आत्मा-परमात्मा की बातें कर रही थी। मैं उसकी बात सुन रहा था। वह बातों में जब कुछ बोल रहीं थीं, तभी जोरों की हवा आई, तूफान आया समुद्र की तरफ से, मेरा चादर उड़ा और साध्वी को छू गया। साध्वी घबड़ा गईं! मैंने कहा कि चादर छूने से आप घबरा गईं!
उस साध्वी ने कहाः पुरुष का चादर छूने की वर्जना है, मनाई है। मुझे उपवास करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा!

मैंने उससे कहाः अभी तो तुम कह रही थीं कि तुम शरीर भी नहीं हो, आत्मा हो। और अब तुम्हारी बात से पता चलता है कि चादर भी स्त्री और पुरुष हो सकते हैं! चादर भी स्त्री और पुरुष! पुरुष ने चादर पहन-ओढ़ लिया तो पुरुष हो गया चादर भी! यह सप्रेस्ड सेक्सुअलिटी के लक्षण हैं। यह दबाई हुई वासना, यह दबाया हुआ चित्त, यह दबाया हुआ मन है। यह इतने जोर से दबाया गया है कि चादर भी प्रतीक बन गया! चादर से क्यों घबरा गई हो?
मैंने उससे कहाः अगर तुम्हें यह पता चल गया कि आत्मा शरीर नहीं है, तब यदि शरीर भी पुरुष को छू जाए तो घबड़ाने की कोई बात नहीं, क्योंकि शरीर भी मिट्टी है। लेकिन नहीं, अगर चित्त में दबाया गया है तो जिसे दबाया है, उसके प्रति बहुत सजगता, बहुत कांशसनेस हो जाएगी। और जो दबाया है, वह नये-नये रूपों में पकड़ना शुरू कर देगा।
एक साधु के पास मैं ठहरा हुआ था। वह सुबह-शाम दो-तीन बार दिन में कहते
थे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। मैंने उनसे पूछा कि लात मारी कब है? वे कहने लगे, कोई तीस-पैंतीस वर्ष हो गए। मैंने कहाः फिर लात ठीक से लग नहीं पाई होगी। अन्यथा पैंतीस वर्षों तक याद रखने की जरूरत न थी। लग गई थी, बात खत्म हो गई थी। वे लाखों रुपये अब तक पीछा क्यों कर रहे हैं? लाखों रुपयों पर लात मारी है, लेकिन रुपये छूटे नहीं हैं! वे अपनी जगह कायम हैं! दमन किया गया है, त्याग नहीं हुआ। संयम किया गया है, संयम आया नहीं। जब लाखों रुपये पास में रहे होंगे, तब भी अकड़ कर चलते रहे होंगे कि मेरे पास लाखों रुपये हैं। फिर लात मार दी, तब से फिर अकड़ कर चल रहे हैं कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी! और पहली अकड़ से दूसरी अकड़ ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि पहली अकड़ बहुत स्थूल थी, दूसरी अकड़ बहुत सूक्ष्म है। पहली अकड़ पहचान में आ जाती है। दूसरी अकड़ पहचान में भी नहीं आएगी। लेकिन यह संयम न हुआ, यह दमन हुआ। और इसी दमन को हम संयम समझ लेते हैं! हम कहेंगे, यह आदमी बड़ा त्यागी है!
मैं जयपुर में ठहरा हुआ था। एक मित्र आए और मुझसे कहने लगे, एक बहुत बड़े महात्मा ठहरे हैं, आप भी मिलेंगे तो बड़े खुश होंगे।
मैंने उनसे कहाः तुमने किस तराजू पर तौल कर पता लगाया कि महात्मा बड़े हैं? महात्मा के बड़े होने का पता कैसे चला? मेजरमेंट क्या है? तौला कैसे तुमने? कौन सा फुट है, जिससे तुम्हें पता लग गया कि महात्मा बड़े हैं? उन्होंने कहाः इसमें तौलने की कोई जरूरत नहीं है। खुद जयपुर महाराज उनके पैर छूते हैं।
तो मैंने कहाः फिर जयपुर महाराज बड़े होंगे। महात्मा का बड़ा होना, इससे कहां सिद्ध होता है? जयपुर महाराज अगर पैर छूते हैं किसी संन्यास के तो वह संन्यासी बड़ा हो गया और अगर जयपुर महाराज पैर नहीं छुएंगे तो संन्यासी छोटा हो जाएगा? मापदंड क्या है? मापदंड है--जयपुर महाराज! मापदंड धन है त्याग का भी! त्याग का भी मापदंड धन है!
कभी आपने सोचा, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं। एक भी गरीब आदमी का पुत्र नहीं है! बुद्ध राजपुत्र हैं; राम, कृष्ण सब राजपुत्र हैं! हिंदुस्तान में जितने अवतार, जितने तीर्थंकर, जितने बुद्ध पुरुष हुए, सब राजाओं के पुत्र हैं! कोई गरीब का बेटा तीर्थंकर नहीं हो सका! बात क्या है? क्या तीर्थंकर होने के लिए भी अमीर होना जरूरी है?
तीर्थंकर होने के लिए अमीर होना जरूरी नहीं है। गरीब के बेटे भी तीर्थंकर हुए हैं, लेकिन उनको तौलने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। हम तौलेंगे तभी, जब धन छोड़ कर कोई आएगा। क्योंकि त्यागी का पता भी धन छोड़ने से चलता है। कितना छोड़ा उससे त्याग का पता चलता है! तब तो यह त्याग न हुआ, यह धन का ही दूसरा रूप हुआ। यह धन का ही इंवेस्टमेंट हुआ, मोक्ष के लिए। यह धन की ही दूसरी स्थिति हुई, यह लोभ की ही दूसरी प्रक्रिया हुई।
मैं अहमदाबाद में था, कोई दो वर्ष हुए, एक संन्यासी का व्याख्यान हुआ। फिर मैं बोला। उस संन्यासी ने कहा कि अगर मोक्ष पाना हो तो लोभ छोड़ना पड़ेगा। मैं उनके पीछे बोला। मैंने कहा कि इन्होंने बड़ी अदभुत बात कही है। ये कहते हैं, अगर मोक्ष पाना है तो पहले लोभ छोड़ना पड़ेगा! और मोक्ष पाने का लोभ पहले दे रहे हैं! और कोई लोभी होगा तो बेचारा लोभ छोड़ने को तैयार हो

जाएगा। क्योंकि मोक्ष का लोभ अगर पैदा हो गया तो वह लोभ छोड़ने को राजी हो जाएगा। लेकिन मोक्ष का लोभ भी लोभ है, वह भी ग्रीड है।
जिंदगी बहुत उलझी हुई है। इस उलझी हुई जिंदगी में संयम के नाम से, त्याग के नाम से, मोक्ष के नाम से उलटी चीजें चलती हैं। उन उलटी चीजों के मैं विरोध में हूं। जिंदगी साफ, सीधी, और अखंड होनी चाहिए। उसमें टुकड़े- टुकड़े नहीं चाहिए। भीतर कुछ उलटा हो, बाहर कुछ उलटा हो, ऐसा नहीं चाहिए। जिंदगी इकट्ठी, इंटीग्रेटेड--जिंदगी एक इकाई चाहिए। जो भीतर हो, वही बाहर हो।
लेकिन हम बाहर की तरफ से भीतर को नहीं बदल सकते। हां, भीतर की तरफ से बाहर को बदला जा सकता है। अगर किसी की जिंदगी में धन व्यर्थ हो जाए तो फिर वह धन को छोड़ा, ऐसा भी कभी नहीं कहेगा। क्योंकि जो व्यर्थ हो गया, उसे छोड़ने का कोई मतलब नहीं होता है। आप रोज अपने घर के बाहर कचरा फेंक आते हैं, लेकिन जाकर गांव में खबर नहीं करते कि आज फिर कचरे का त्याग कर दिया। क्योंकि कचरे का त्याग नहीं किया जाता, कचरे का त्याग कर ही देना होता है। लेकिन कोई आदमी कहता है कि मैंने धन का त्याग किया तो धन अभी उसके लिए कचरा नहीं हो गया। अभी धन उसके लिए धन था। और धन था इसलिए त्यागा। त्याग के बाद भी उसे लग रहा है कि वह धन है!
मैंने सुना है, एक फकीर था गांव में। गरीब आदमी था, भिखमंगा था। बहुत गरीब था, लेकिन कभी, न किसी से दान मांगा, न कभी किसी के सामने हाथ फैलाया। भिखारी था एक अर्थों में। भीख नहीं मांगता था, लेकिन उसके पास कुछ भी न था। उसकी पत्नी थी और वे दोनों जंगल से लकड़ियां काट लाते थे बेच देते थे, जो बचता था, उसी से खा लेते थे। सांझ जो बचता था, उसको बांट देते थे। सुबह फिर लकड़ियां काट लाते।
एक बार बेमौसम पानी गिरा। और पांच दिन तक वे लकड़ियां काटने न जा सके
तो पांच दिन भूखे ही रहे। बूढ़े थे दोनों। छठवें दिन सूरज निकला तो दोनों जंगल गए लकड़ियां काटने। जंगल से लकड़ियां काट कर लौटते थे। आगे बूढ़ा था, पीछे बुढ़िया थी लकड़ी की मोरी लिए हुए। बूढ़े ने पगडंडी के रास्ते पर देखा कि घुड़सवार आगे गया है, पैर के चिह्न हैं घोड़े के। और पास ही पगडंडी के किनारे अशर्फियों की एक थैली पड़ी है। कुछ अशर्फियां बाहर हैं, कुछ थैली के भीतर हैं!
उस बूढ़े को ख्याल आया। संयमी आदमियों को इस तरह के ख्याल बहुत आते हैं। उसे बूढ़े को ख्याल आया कि मेरी बुढ़िया जो पीछे आ रही है, कहीं उसका मन डांवाडोल न हो जाए। बुढ़िया का मन धन पर डांवाडोल न हो जाए, यह बूढ़े को ख्याल आया! संयमी को दूसरों की बड़ी फिकर होती है, कि किसका मन कहां डांवाडोल हो रहा है! संयमी आदमी राम भर सोता नहीं बेचारा। पास-पड़ोस में कौन क्या कर रहा है, इसकी फिकर रखता है! संयमी आदमी इसका हिसाब रखता है कि किस-किस को नरक जाना पड़ेगा और नरक में क्या-क्या होगा! इसकी वह सब किर रखता है कि किस तरह जलाए जाओगे, किस तरह सड़ाए जाओगे।
संयमी आदमी यह सब फिकर क्यों रखता है? संयमी आदमी के खुद के भीतर जो हो रहा है, वह दूसरों पर प्रोजेक्ट करता है, वह दूसरे पर थोपता है, जो उसके भीतर हो रहा है।
उस बूढ़े ने सोचा कि कहीं बुढ़िया का मन डांवाडोल न हो जाए, डांवाडोल उसका मन खुद हो गया था! अन्यथा बुढ़िया का उसे ख्याल भी न आता। लेकिन कोई यह मानने को राजी नहीं होता कि मेरा मन डांवाडोल हो गया है। उसने सोचा कि बुढ़िया का मन डांवाडोल न हो जाए! जल्दी से उसने अशर्फियों को गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढंक दिया। बुढ़िया आ गई, जब मिट्टी ढंक रहा था।
उस बूढ़ी औरत ने पूछा कि आप क्या कर रहे हैं, कैसे रुक गए?
बूढ़े ने कसम ली थी कि कभी झूठ नहीं बोलेंगे। संयमी आदमी थे, सत्य बोलने का नियम ले रखा था!
संयमी आदमी नियम लेकर चलते हैं। और जो भी आदमी नियम लेकर चलता है, ध्यान रखना, उसके भीतर उलटा हमेशा मौजूद रहता है; अन्यथा नियम लेने की कोई जरूरत नहीं है। आप कभी यह नियम नहीं लेते कि हम दरवाजे से निकलेंगे क्योंकि दरवाजा निकलने जैसा दिखाई पड़ता है। लेकिन अंधा आदमी यह भी कसम खा

सकता है कि कसम खाता हूं कि मैं दरवाजे से निकलूंगा, दीवाल से नहीं निकलूंगा।
अंधा कसम खा सकता है, आंख वाला कभी कसम नहीं खाएगा। कसम की कोई जरूरत नहीं है। जिसे उलटा हो सकता है, वह कसम लेता है। जिसे उलटा नहीं हो सकता, वह क्यों लेगा? उस बूढ़े ने कसम खाई थी कि झूठ नहीं बोलेंगे! कसम किसके खिलाफ खाई जाती है? अपने ही खिलाफ, वह जो झूठ बोलने का मन है, उसके खिलाफ। बुढ़िया ने पूछा कि क्या कर रहे हो तो मजबूरी खड़ी हो गई। सच बताना जरूरी हो गया। उस बूढ़े ने कहा कि क्या कर रहा हूं, मत पूछो तो अच्छा है। लेकिन तुम पूछती हो तो मुझे कहना पड़ेगा। यहां अशर्फियां पड़ी थीं सोने की। उनको गड्ढे में डाल कर दबा रहा हूं कि कहीं तेरा मन डांवाडोल न हो जाए!
वह बूढ़ी खड़ी होकर हंसने लगी। उस जंगल में उसकी हंसी गूंजी; काश, आप भी वहां होते, वह हंसी सुनते! वह बूढ़ा पूछने लगा हंसती क्यों हो?
उस बुढ़िया ने कहाः हे भगवान! मैं समझती थी कि तुम्हारा धन से छुटकारा
हो गया, लेकिन तुम्हें अभी धन दिखाई पड़ता है। तुम्हें अशर्फियां दिखाई कैसे पड़ी? तुम अपने रास्ते जाते थे, तुम्हें अशर्फियां कैसे दिखाई पड़ीं? अशर्फियां सोने की थी, यह तुम्हें कैसे दिखाई पड़ा? सोने और मिट्टी में तुम्हें फर्क मालूम पड़ता है! और मैं धोखे में रही आज तक, मैं सोचती थी कि तुम मुक्त हो गए। और आज तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते देख कर मैं शर्मिंदा हो रही हूं। ये दरख्त हंसते होंगे नभ में कि मिट्टी पर यह आदमी मिट्टी डाल रहा है!
ये दोनों संयमी हैं। बूढ़ा संयमी है उस तरह का, जिस संयम से सावधान रहना चाहिए। वह स्त्री भी, बुढ़िया भी संयमी है, उन अर्थों में जिन अर्थों से जीवन सत्य से रूपांतरित होता है। अगर यह दिखाई पड़ गया कि सोना मिट्टी है तो फिर इस मिट्टी को मिट्टी से ढांकने की भी जरूरत नहीं रह जाती। न इसे छोड़ने और न इससे भागने की जरूरत रह जाती है। न इसके त्याग की खबर दुनिया मैं फैलाने की जरूरत रह जाती है। बात खत्म हो गई, जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से नीचे गिर जाता है। न तो वृक्ष को पता चलता है, न सूखे पत्ते को पता चलता है, न हवाओं को खबर आती है कि सूखा पत्ता टूट गया। टूट कर चुपचाप गिर जाता है। लेकिन कच्चे पत्ते को तोड़ें तो वृक्ष को भी पता चलता है। कच्चे पत्ते
के भी प्राण कंप जाते हैं और पीछे घाव छूट जाता है। कच्चे पत्ते पीछे घाव छोड़ जाते हैं क्योंकि कच्चे पत्तों को तोड़ना पड़ता है, कच्चे पत्ते टूटते नहीं हैं। और जो आदमी संयम को थोपता है, लादता है, चेष्टा करता है, वह सब कच्चे पत्ते तोड़ता है, उसके घाव छूट जाते हैं। और घाव पीछे कष्ट देते हैं, तकलीफ देते हैं, दुख देते हैं।
मैं उस संयम के पक्ष में हूं, जो सूखे पत्ते की तरह आता है। जिंदगी से कुछ चीजें गिर जाती हैं, अर्थहीन हो जाती हैं, झड़ जाती हैं और जिंदगी रूपांतरित हो जाती है।
लेकिन वे झड़ कैसे जाएंगी? आप कहेंगे, जब तक हम उन्हें गिराएंगे नहीं,
ये गिरेंगी कैसे? गिराएंगे तो फिर कच्चे पत्ते टूट जाएंगे!
तो फिर मैं क्या कहता हूं--गिराइए मत, समझिए। जिंदगी में जो भी बुरा है, उससे लड़ने मत लग जाइए, उसे जानिए, उसे पहचानिए। अगर क्रोध है, उदाहरण के लिए, तो क्रोध से लड़िए मत; क्रोध को जानिए, क्रोध को समझिए। और जब क्रोध पकड़ ले तो एक कोने मैं चले जाएं, द्वारा बंद कर लें और क्रोध के ऊपर ध्यान करें--मेडिटेट ऑन इट। क्रोध को देखें, कहां है क्रोध? पहचानें, क्या है क्रोध? कहां-कहां प्राण को घेरा रहा है? चित्त में कहां-कहां क्रोध की आग जल रही है, इसे देखें।
और आप हैरान रह जाएंगे। जितना क्रोध को आप समझेंगे, उतना ही विलीन हो जाएगा। और आप जितने क्रोध के प्रति जागेंगे, क्रोध विनष्ट हो जाएगा। और एक घड़ी आएगी जीवन में कि क्रोध सूखे पत्ते की तरह गिर जाएगा। फिर पीछे जो रह जाएगा, वह शांति है।
क्रोध दबाने से शांति उपलब्ध नहीं होती। क्रोध के चले जाने पर जो शेष
रह जाता है, उसका नाम शांति है।
यह ध्यान रहे, हिंसा की उलटी नहीं है अहिंसा। अहिंसा हिंसा का अभाव है, एब्सेंस है।

प्रेम घृणा का उलटा नहीं है कि आप घृणा को दबा कर प्रेम को ले आएंगे। प्रेम घृणा का अभाव है। जब घृणा का अभाव हो जाता है तो जो शेष रह जाता है, वह प्रेम है।
यह ठीक वैसा ही है, जैसे इस अंधेरी रात में हम एक दीया जलाएं, दीया जलते ही अंधेरा विलीन हो जाए। क्योंकि दीया जलते ही अंधेरा कहां टिक सकेगा? अंधेरा चला जाएगा।
लेकिन कोई आदमी दीया न जलाए और अंधेरे को दूर करने में लग जाए, धक्के
दे अंधेरे को, तलवारें ले आए, कुश्ती लड़े अंधेरे से, तो भी अंधेरा नहीं हारेगा। लड़ने वाला ही हार जाएगा। अंधेरा नहीं हटाया जा सकता। हिंसा को भी नहीं हटाया जा सकता। क्रोध को भी नहीं हटाया जा सकता। घृणा को भी नहीं हटाया जा सकता।
लेकिन दीए जलाए जा सकते हैं। ज्ञान का दीया जलाया जा सकता है। और ज्ञान का दीया जलते ही जो अंधकार है, वह विलीन हो जाता है। उसका कहीं खोजना भी मुश्किल है।
एक छोटी सी घटना, और मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
मैंने सुना है, एक बार अंधेरे ने भगवान के जाकर पैर पकड़ लिए और भगवान
के पैर पर सिर पटकने लगा। उसकी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। भगवान ने पूछाः हुआ क्या है? तुझे क्या हो गया है? कभी तू आया नहीं, आज क्या हो गया है?
उस अंधेरे ने कहाः बहुत परेशान होकर आया हूं? मैं बहुत घबड़ा गया हूं। करोड़ों वर्षों से तुम्हारा सूरज मेरे पीछे बुरी तरह से पड़ा है। सुबह से उठता है और मुझे खदेड़ना शुरू कर देता है। सांझ तक मैं थक जाता हूं, हाथ-पैर टूट जाते हैं। किसी तरह वह पीछा छोड़ता है। रात भर विश्राम पूरा भी नहीं हो पाता कि वह सुबह फिर मेरे द्वार के सामने हाजिर है। फिर दौड़ शुरू हो जाती है। मैंने क्या बिगड़ा है तुम्हारे सूरज का?
भगवान ने कहाः यह तो बड़ी ज्यादती हो रही है, लेकिन तुमने कहा क्यों नहीं अब तक! मैं सूरज को बुला कर बात कर लेता हूं। भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तू अंधेरे के पीछे क्यों पड़ा है? इसने क्या बिगाड़ा है तेरा? सूरज ने कहाः अंधेरा! मेरी तो अब तक मुलाकात भी नहीं हुई! अंधेरा है कहां? मेरी तो अब तक मुठभेड़ भी नहीं हुई, रास्ते पर कभी मिलना भी नहीं हुआ, कोई नमस्कार, कुछ भी नहीं हुआ! कहां है अंधेरा? मैं क्यों सताऊंगा उसे, जिसे मैं जानता भी नहीं हूं? क्योंकि शत्रु बनाने के पहले भी तो मित्र बनाना जरूरी रहता है। बिना मित्र बनाए तो किसी को शत्रु नहीं बनाया जा सकता। मेरी मित्रता ही नहीं है तो शत्रुता का सवाल ही नहीं है। कहां है? आप बुला दें, मैं क्षमा भी मांग लूं और उसकी शक्ल को ठीक से पहचान लूं, ताकि कभी भूल-चूक से कोई गलती न हो जाए।
इस बात को हुए, कहते हैं अरबों वर्ष बीत गए। वह भगवान की फाइल में मामला दबा है! वह अंधेरे को सामने नहीं ला सके अब तक सूरज के! वह कभी भी ला नहीं सकेंगे। क्योंकि अंधेरा सूरज का उलटा नहीं है। अंधेरा सूरज का अभाव है। अभाव और उलटे के फर्क को समझ लेना चाहिए।
अंधेरा अगर सूरज का उलटा हो तो हम एक बोरी भर अंधेरा एक दीये के ऊपर लाकर पटक सकते हैं। दीया फौरन बुझ जाएगा। लेकिन आप बोरी भर अंधेरा लाकर दीये के ऊपर नहीं पटक सकते हैं। अंधेरा अभाव है, एब्सेंस है, प्रकाश की गैर-मौजूदगी है, प्रकाश का न होना है। अंधेरे का अपना कोई भी अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है प्रकाश का। और जब प्रकाश का अस्तित्व नहीं होता तो जो शेष रह जाता है, वह अंधेरा है। अंधेरे को दूर नहीं किया जा सकता है। अंधेरे के साथ सीधा कुछ भी नहीं किया जा सकता। अगर अंधेरा लाना है तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ेगा।
ठीक ऐसे ही जीवन में जो भी बुरा है, उसे मैं अंधेरा मानता हूं। चाहे वह क्रोध हो, चाहे काम हो, चाहे लोभ हो। जीवन में जो भी बुरा है, वह सब अंधकारपूर्ण है। उस अंधेरे से जो सीधा लड़ता है, उसको संयमी कहते हैं। मैं उसको संयमी नहीं कहता। मैं उसे पागल होने की तरकीब कहता हूं या पाखंडी होने की तरकीब कहता हूं। और पाखंडी हो जाइए, चाहे पागल--दोनों बुरी हालतें हैं।

अंधेरे से लड़ना नहीं है, प्रकाश को जलाना है। प्रकाश के जलते ही अंधेरा नहीं है।
जीवन में जो श्रेष्ठ है, वही सत्य है।
उसका अभाव विपरीत नहीं है, उलटा नहीं है। उसका अभाव सिर्फ अभाव है।
इसलिए अगर कोई हिंसक आदमी अहिंसा साध ले, तो साध सकता है, लेकिन भीतर हिंसा जारी रहेगी। कोई भी आदमी ब्रह्मचर्य साध ले, साध सकता है; लेकिन भीतर वासना जारी रहेगी। यह संयम धोखे की आड़ होगी, यह संयम एक डिसेप्शन होगा। इस संयम के मैं विरोध में हूं।
मैं उस संयम के पक्ष में हूं, जिसमें हम बुराई को दबाते नहीं, सत्य को, शुभ को जगाते हैं। जिसमें हम अंधेरे को हटाते नहीं, ज्योति को जलाते हैं। वैसा ज्ञान, वैसा जागरण व्यक्तित्व को रूपांतरित करता है और वहां पहुंचा देता है, जहां सत्य के मंदिर हैं।
जो शुभ में जाग जाता है, वह सत्य के मंदिर में पहुंच जाता है।
इन तीन दिनों में सत्य की यात्रा पर ये थोड़ी सी बातें कही हैं। लेकिन मेरी बातों से आपकी यात्रा नहीं हो जाएगी। किसी की बातों से किसी की यात्रा नहीं होती। इसलिए अंतिम बात, यह यात्रा आप करेंगे तो ही हो सकती है। अगर मेरी बातें सुन कर आपकी यात्रा हो सके, तब बड़ी आसान है, तब तो दुनिया में सबकी यात्रा कभी की हो गई होती।
हमने बुद्ध को सुना है, महावीर को सुना है। लेकिन सुनने से कभी किसी
की यात्रा नहीं होती है। लेकिन कुछ लोग यह सोचते हैं कि सुनने से ही यात्रा हो जाती है, तो वे भ्रम में भटक रहे हैं। यात्रा खुद करनी पड़ती है। कोई दूसरा किसी के लिए यात्रा नहीं कर सकता है।
न मैं आपके लिए श्वास ले सकता हूं, न आपके लिए प्रेम कर सकता हूं, न आपकी जगह चल सकता हूं, न आपकी जगह जी सकता हूं, न आपकी जगह मर सकता हूं। तो आपकी जगह सत्य को कैसे पा सकता हूं? कोई मनुष्य किसी दूसरे की जगह कुछ भी नहीं पा सकता।
और दूसरे की बात सुन कर कई बार यात्रा का भ्रम हो जाता है। कई बार ऐसा लगता है कि हम उसे सुन कर वहां पहुंच गए, जो हमने सुना। यह भ्रम बहुत खतरनाक है।
यह भगवान न करे कि मेरी कोई बात भी किसी आदमी के मन में यह भ्रम पैदा करे कि वह कहीं पहुंच गया है। कुछ लोगों को यह भ्रम पैदा हो जाता है। वे मुझे लिखते हैं कि हमने आपकी बात सुनी और बड़ी शांति मिली। बात सुनने से शांति नहीं मिल सकती, सिर्फ मनोरंजन हो सकता है। बात सुनने से सत्य नहीं मिल सकता, सिर्फ शब्द मिल सकते हैं। सत्य और शांति तो तब मिलेगी, जब आप चलेंगे।
तो जो मैंने कहा है, वह सुनने के लिए नहीं, वह चलने के लिए कहा है। अगर उसमें कोई बात भी ठीक मालूम पड़ती हो तो अपने विवेक का थोड़ा प्रयोग करना, एकाध कदम उठाना।
हजार-हजार शास्त्रों का उतना मूल्य नहीं है, जितना अपने द्वारा उठाए
गए एक कदम का मूल्य है।
और इसकी फिकर मत करना कि रास्ता बहुत लंबा है। क्योंकि लंबे से लंबे रास्ते भी एक-एक कदम उठा कर पूरे हो जाते हैं।
गांधी जी एक गीत पसंद करते थे। वह गीत बहुत अदभुत है। वह उनके आश्रम में रोज उसे गाते थे, गंवाते थे। वह गीत हैः वन स्टेप इ.ज इनफ फॉर मी, आई डू नॉट लांग फॉर दि डिस्टेंट सीन--मैं दूर के दृश्य की कामना नहीं करता, मेरे लिए एक ही कदम पर्याप्त है।
लेकिन जो एक कदम चलता है, वह दूर के दृश्य पर पहुंच जाता है। एक कदम से ज्यादा तो एक साथ कोई भी नहीं चल सकता। दो कदम कभी किसी को एक साथ चलते देखा है? एक कदम ही कोई चल सकता है--बड़े से बड़ा आदमी और छोटे से छोटा आदमी। इस मामले में हम सब बराबर हैं। बड़े से बड़ा आदमी भी एक ही कदम चलता है और छोटे से छोटा भी। दुनिया का कोई बड़ा से बड़ा आदमी भी हो, वह दो कदम एक साथ नहीं चल सकता। एक कदम ही चला जाता है एक बार में। लेकिन एक-एक कदम मिल कर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।

एक गांव के बाहर एक युवक बैठा हुआ था, एक छोटी सी लालटेन लिए हुए। उसे पहाड़ की यात्रा करनी थी, लेकिन पहाड़ दूर था, रात अंधेरी थी और उसके पास छोटी लालटेन थी, जिससे दो-तीन फीट के घेरे में प्रकाश पड़ता था। उसने सोचा, उसने गणित लगाया--कुछ लोग गणित में बड़े कुशल होते हैं। उसने गणित लगाया कि इतना बड़ा अंधकार है दस मील लंबा। इस दस मील के अंधकार को इस तीन फीट प्रकाश फेंकने वाली लालटेन से भाग दिया! अंधकार कभी दूर नहीं हो सकता है इतनी छोटी सी लालटेन से! कैसे दूर होगा? इतना लंबा रास्ता कैसे प्रकाशित होगा? वह बैठ गया! उसने कहा, मेरा जाना फिजूल है, इतना अनाप अंधेरा है, इतनी सी लालटेन है, एक कदम पर रोशनी पड़ती है, कैसे पहुंचूंगा? कैसे दस मील पार करूंगा?
उसके पीछे ही एक बूढ़ा भागता चला आ रहा है, वह भी छोटा सा हाथ में कंदील लिए हुए है! उस बूढ़े ने पूछा कि बेटे, तुम बैठ क्यों गए हो?
उस जवान लड़के ने कहाः बैठ न जाऊं तो क्या करूं? दस मील लंबा अंधकार है
और दो-तीन फीट की रोशनी है मेरे पास। इस रोशनी से दस मील कैसे पार करूंगा? उस बूढ़े ने कहाः अरे पागल, दस मील पार करना किसे है एक साथ? तीन फीट पार कर ले, तब तक तीन फीट आगे रोशनी चली जाएगी। फिर तीन फीट पार कर लेना। फिर तीन फीट पार कर लेना, फिर तीन फीट आगे रोशनी चली जाएगी। रोशनी सदा आगे चलती है न, तो बस फिर दस मील क्या, हजार मील का अंधकार भी कट जाएगा। लेकिन अंधकार चलने से कटता है।
एक छोटा सा पैर उठाएं और जिंदगी उन दूर के दृश्यों पर पहुंच जाएगी, जो
आज दिखाई नहीं पड़ते हैं। लेकिन चलने से दिखाई पड़ सकते हैं। जो आज सिर्फ शब्दों के जाल मालूम पड़ते हैं, वही कल जीवन के सत्य बन सकते है। जो आज सुनने में मधुर मालूम पड़ते हैं, काश, हम वहां पहुंच जाएं तो वे कितने मधुर होंगे, इसे कहना कठिन है।

इन तीन दिनों में ये सारी बातें इतने प्रेम और शांति से आपने सुनीं, इसके लिए अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रमाण करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।